ध्यान कैसे करें

पूज्यपाद
डा॰ विक्रम जी महाराज
दिव्य योग केन्द्र, 319 शास्त्री नगर, जम्मू
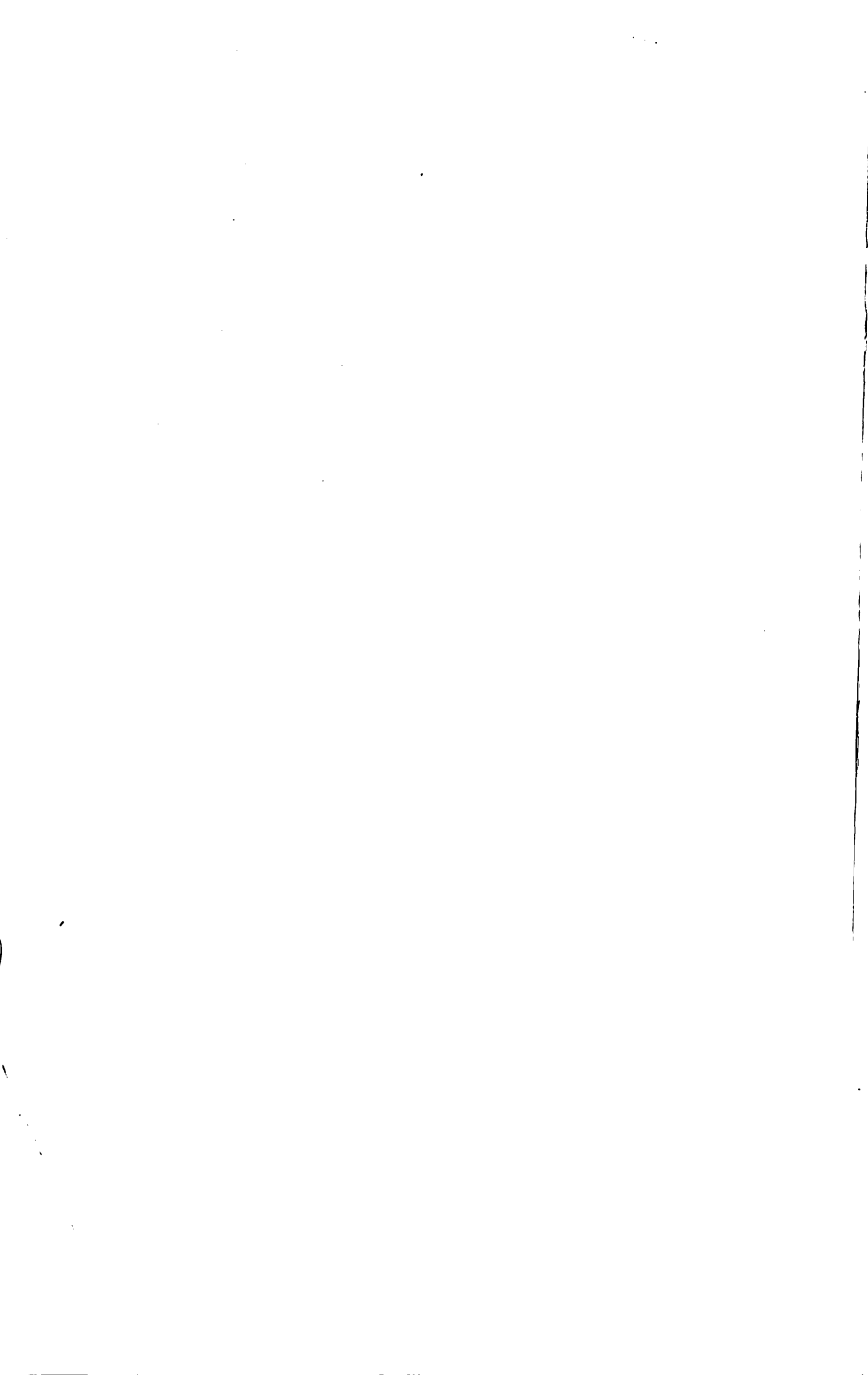
ध्यान कैसे करें

पूज्यपाद
डा॰ विक्रम गुप्ता
(योगाचार्य)

सहंसम्पादक :
मिस मोनिका गुप्ता
M.SC. (CHEMISTRY)
D.S.T. QUALIFIEF

मूल्य :– 40/–

दिव्य योग केन्द्र, 319 शास्त्री नगर, जम्मू

'लक्ष्य कैसे प्राप्त करें'

हजारों व्यक्ति ध्यान करने और समाधि लगाने की कोशिश करते हैं, परन्तु उन्हें सफलता नहीं मिलती। इस का कारण है कि समाधि की सिद्धी के लिए 'यम नियमों' का पालन पू रूप से नहीं हुआ। उन में कोई कमी रह गई है। समाधि व लिए नियमों का पालन करना अति आवश्यक है। इनके बिन ध्यान और समाधि का सिद्ध होना बहुत कठिन है। झूठ, कपट चोरी और व्यभिचार इत्यदि। दुराचार की वृत्तियों के नष्ट हु बिना, ध्यान और समाधि नहीं हो सकते।

जब तक हमारा मन इधर-उधर भाग रहा है, भटक रह है, तब तक हम अन्दर की गहराई में नहीं उतर सकते। ध्यान नहीं लग सकता। जिस वस्तु पर हमारा ध्यान है, धारणा है जब तक उसमें रम नही जाते तब तक ध्यान कैसे लग सकता है।

यह मन रूपी दर्पण है, यह विचारों, वासनाओं और इच्छाओं की धूली से ढका हुआ है। ऐसे में हम आत्मा के दर्शन नहीं कर सकते। जब तक विचारों की धूलि, वासनाओ की धूलि से दर्पण साफ न हो, तब तक आत्मा का दर्शन सम्भव नहीं हो सकता। केवल यही एक शरीर है जिसमें स्वयं परमात्मा के दर्शन होते है। यही एक शरीर है जिसमें मनुष्य 'ध्यान' लगाए तो अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है।

डा॰ विक्रम गुप्ता
योगाचार्य

प्रस्तावना

इस संसार में ऐसा कोई प्राणी नहीं है जिसे ध्यान का आसरा न लेना पड़ता हो। जीवन के हर क्षेत्र में, जीवन के एक–एक क्षण में, पग–पग पर सहारा लेना पड़ता है। ध्यान मनुष्य का स्वभाव है। जिसे जन्म के साथ ही ले कर आता है। जिस काम को मनुष्य ध्यान के साथ करता है उसी में उसे सफलता मिलती है। विजय श्री उस के चरण चूमती है।

मानव जीवन को साथर्क बनाना यह केवल ध्यान द्वारा ही सम्भव है। भिन्न भिन्न धर्मों के सिद्धान्त–भिन्न भिन्न हो सकते हैं परन्तु एक बात पर सब सहमत हैं कि जो आनन्द का मार्ग है वह ध्यान से होकर ही जाता है। अर्थ यह कि ध्यान द्वारा ही सम्भव है। अपने भीतर आत्मस्वरुप को जिसने भी खोजा है वह ध्यान के नियमित अभ्यास से यह विश्वास दृढ़ हुआ है कि मैं करता नहीं, करता वह ईश्वर है। मैं दृष्टा हूँ **Silent Spectator** हूँ।

प्रकृति में व्याप्त, अंतर, विरोध के कारण जन्म से ही हमारा (सम्बन्ध) और जानकारी स्थूल शरीर से अपेक्षाकृत ज्यादा होती है। भीतर के सूक्ष्म और करण शरीर के अन्वेषण में रुकावट आ जाती है। ध्यान की पहुचँ इसी सूक्ष्म और कारण शरीर तक होती है। इसी से मानव के मानसपटल पर कब्ज़ा जमाए हुए विचार, विकार, एवं संस्कार सामने दिखाई देना शुरु हो जाते हैं। जैसे–जैसे अभ्यास करते हुए आगे बढ़ते जाते हैं, चित्त की चारों अवस्थाओं, जाग्रत, स्वपन, सुषुप्ति एवं तुरीयावस्था का ध्यान द्वारा अभ्यास होने लगता है। हमें साक्षी और दृष्टा का एहसास होने लगता है। ऐसा होने

से अंहकार का पर्दा उतरने लगता है। अहंम साधना में सब से बढ़ी बाधा है। इस से सावधान हो कर हम आगे बढ़ सकते हैं। अगर हम यहीं उलझ जाएं तो आगे नहीं बढ़ सकेंगे। ध्यान के सतत् अभ्यास में यह पहली भूल है। मैं, शरीर, मन, बुद्धि, चित्त हमें यह भूल सुधारनी होगी। फिर परिणाम निश्चित और स्थायी होंगे।

जन साधारण के लिए ध्यान में मन लगाने के लिए आसन– प्राणायाम को शक्तिशाली साधन माना गया है।

योगासन से शरीर स्वस्थ बनता है। प्राणायाम से मन नियंत्रित होता है। मन का निर्विषय होना और इन्द्रियों के अन्तर्मुखी होने को ध्यान की शुरूआत माना जाता है। अपनी समस्त शक्तियों और ऊर्जा को एक स्थान पर केन्द्रित कर के उस का प्रयोग सदकार्यों के लिए करना ध्यान की पहली अवस्था है। जिसे सम्प्रज्ञात समाधि कहा जाता है।

जिस काम में चित्त की आसक्ति है वह शान्ति का प्रदाता नहीं हो सकता इस लिए निस्वार्थ भाव–बिना लालच के जो कार्य लोक कल्याण हेतु किया जाए वह शुद्धि के हेतु बनता है। वह ध्यान को प्रगाढ़ बनाने में, परिपक्व करने में बहुत सहायता करता है। कर्म कभी ऊँचा–नीचा नहीं होता है हमेशा भाव ऊँचा, नीचा होता है। जो भी कार्य निस्वार्थ एवं समर्पित भाव से किया जाता है, उस का कर्त्ता श्रेष्ठ होता है। यह सब तभी संभव हो सकता है, जब ध्यान साधना का नियमित अभ्यास किया जाता है।

मन चंचल है, इसे खाली मत रहने दो। इसे फौरन प्रभु के चर्णों में चिंतन में लगा दो। इस विधि से साधना की सहज

अवस्था की प्राप्ति होनी शुरु हो जाती हैं।

वासनाओं का निष्कासन हो कर अन्त हो कर शान्तमय अवस्था प्राप्त होगी। यही अवस्था आत्मसाक्षात्कार का आधार बन पाएगी।

जैसे आप ने देखा कि जमीन मे पानी है, काष्ठ यानि लकड़ी के अन्दर आग है, दूध में घी है – परन्तु सरलता से दिखाई नहीं देते।

विधिपूर्वक प्रयास करने के पश्चात ही दृष्टिगोचर होते हैं। ठीक उसी प्रकार अपने मन, बुद्धि और चित्त को निर्मल और शान्त करने हेतु, ध्यान का विधिपूर्वक और अटलता से अभ्यास करने से ही अपने अन्दर उस परम सत्य (सच्चाई) की खोज के तरीके से सरल मार्ग हो जाता है। फिर उस असीम जिस की कोई सीमा नहीं है आनन्द को जन जन के मंगल कल्याण हेतु बांटने में वह साधक समृद्ध पुरुष की तरह हमेशा तत्पर रहता है। मेघ के समान अपनी करुणा की वर्षा करता रहता है वह सब का मंगल चाहता है। ध्यान के साधकों को तीन बातें हमेशा याद रखनी चाहिए।

ध्यान किस के लिए किया जाए। ध्यान किस वस्तु पर किया जाए। ध्यान कैसे किया जाए।

इस भाग–दौड़ के जीवन में हर मनुष्य शान्ति के लिए भाग रहा है। घर–बार को सुखी–आनन्दमय बनाना चाहता है, परन्तु मार्ग दर्शन नहीं है।

सुख वही बाँट सकता है जो स्वंय सुखी है।

जो खुद अशान्त है, वह औरों को शांति क्या बांटेगा।

यही ध्यान का रास्ता है। सच्चे सुख का, जन जन के

कल्याण का। मैंने जो अपने जीवन में साधक के तौर पर अनुभव किया है, उन अनुभवों के आधार पर ही सब कुछ इस पुस्तक के द्वारा आप तक पहुँचाने का अभ्यास कर रहा हूँ।

ओम शान्तिः शान्तिः शान्तिः

प्रेरणा एवं अनुभव

व्यक्ति के संस्कार, परिवेश एवं शिक्षा के आधार पर उस के व्यक्तित्व का विकास होता है। भारत की सांस्कृतिक चितनधारा पर मेरा परम अटल विश्वास है। भौतिक दृष्टिकोण को प्रधानता देने वाली आधुनिक शिक्षा दीक्षा में पल बढ़ कर भी योग विद्या की रुचि एवं विकास कुछ तो मेरे पूर्व जन्म के संस्कारों और कुछ प्रातः स्मरणिय पूज्य गुरु "श्री जम्मू महाराज जी" के सानिध्य एवं प्रेरणा का प्रतिफल है। सन् 1965 में पूज्य गुरु जी से मेरा सम्पर्क हुआ और उन की कृपा से योगाभ्यास की रुचि बढ़ने लगी।

जीवन एवं जगत के सम्बन्ध में कई प्रश्न उठने लगे। आत्मिक उन्नति की सही दिशा क्या है। इस जिज्ञासा ने योग साहित्य के अध्यन की और झुकाव कर दिया। एक बात सच्चे मन से कह दूँ कि योग जैसे महान विषय पर कुछ कहना, मैं समझता हूँ कि मेरे लिए बाल बुद्धि का ही प्रयास है।

परन्तु प्रयत्न करना मनुष्य का धर्म है और आशा करता हूँ कि बाल प्रयत्न को सुधि लोग भूलों भरा समझ कर भी मेरा उत्साह बढ़ाएंगे। झूठ–झूठ ही सही पीठ थपथपाकर कर आगे कुछ कर दिखाने की हिम्मत प्रधान करेंगे।

महान ऋषियों और मुनिषियों (मुनियों) द्वारा निर्दीष्ट मार्ग

पर चलने का संकल्प किया है। आशा है कि सुधि साधक मेरी भूलों को क्षमा करेंगें क्योंकि अपनी अटपटी भाषा में उस योग विद्या की बात कर रहा हूँ जिस का न आदि है न अन्त।

रान् 1985 में मेरा संयोगवश "प्रभु कृपा से" सर्म्पक ब्रह्मलीन "डा॰ हरि कृष्ण सदा शिव जी" से हुआ।

"ब्रह्मलीन डा॰ जी" शिव शक्ति धाम ग्रेटर कैलाश के अधिष्ठाता थे। इच्छुक जिज्ञासुओं को **Canal Road** पर (रजिन्द्र पार्क) में योग की शिक्षा देते थे। योगासन विद्या में उन्होंने मेरी काफी सहायता की। "शिव शक्ति धाम" जो ग्रेटर कैलाश कलोनी में बना हुआ हैं इसकी **Construction** का कार्य मेरी देख–रेख में हुआ था। मैं उन का दीक्षक न था पर वह मुझ पर बहुत विश्वास करते थे।

उस विश्वास के सूत्र में बँधे हुए, मैं कुंजवानी से ग्रेटर केलाश धाम तक पैदल चल के पहुँचता था। इस **Construction** के बाद मेरे पूरे शरीर में सूजन आ गई बहुत कष्ट उठाया परन्तु उन के प्यार में बंधे रहा। उन्होंने मुझे जव आरान करते देखा तो कुछ इस के गूढ़ रहस्य बताए और आज्ञा दी कि आप जन जन तक इस **Mission** को पहुचाओं। आज भी मैं यही यत्न कर रहा हूँ कि उन के मिशन को यथा शक्ति से घर–घर पहुँचाया जाए और जो इस प्रयास के प्रणाम मिल रहे हैं उन से मैं बहुत सन्तुष्ट हूँ।

दीक्षित न होने के बावजूद भी मैं उन को गुरु जी के समान इज्ज़त करता था, करता हूँ, और करता रहूँगा।

दिखाने के लिए नहीं तन–मन से। बिना शिष्य बने उन्होंने योग विद्या में मेरी बहुत सहायता की थी। उस का श्रेय पूज्य

''डा॰ हरि कृष्ण सदाशिव जी'' को एवं वैद्य ''यझवालक्य'' जी को जाता है।

एक दफा वह अपने शिष्यों के संग दिल्ली–हरिद्वार यात्रा पर गए थे। जिस समय वह जम्मू लोटे तो मैं उन से मिलने गया था।

ब्रह्मलीन डा॰ जी और मैं दोनों Clinic में बैठे थे। मेरे संग रविवार के दिन 8–10 साथी सत्संग के लिए ग्रेटर कैलाश शिव शक्ति धाम में जाते थे।

उन में से डा॰ जी ने मुझे छः नाम बताए और कहा कि इन को आज ही दीक्षा देनी है आप ने। मैंने प्रार्थना की डा॰ साहिब जो आप के इतने पुराने शिष्य हैं अगर आप ने दीक्षा देनी है तो या खुद दें या उन से दिलवाएं।

डा॰ जी ने कहा यह मेरा आदेश है। यह आप को मानना है। वह जब दीक्षा देते थे तो गले में रुद्राक्ष धारण करवाते थे। उन्होंने मुझे छः रुद्राक्ष दिए। मेरी एक न सुनी। मेरे द्वारा उसी दिन रुद्राक्ष धारण करवाए और दीक्षा दिलवाई। वह गृहस्थी हो कर महान संत थे। जो भी काम करते निष्काम भाव से। मुझे वह अपना दायां हाथ मानते थे।

22 सितम्बर, 1990, को प्रातः काल वह ब्रह्मलीन हो गए। तब मेरा सम्पर्क ''वेद्य यझवाल्क्य जी'' से हुआ वह शालीमार चौंक, महाजन हाल में योग की शिक्षा देते थे। उन्होने 1991–92 में हमारे साथ राम मन्दिर शास्त्री नगर में योग का Joint प्रोग्राम आयोजित किया।

जम्मू में योगासनों के कार्यक्रम को बढ़ाने में, जन जन तक पहुँचाने में, उन का बहुत बड़ा योगदान रहा है। जो कभी

भी भुलाया नहीं जाएगा। मैनें राम मन्दिर शास्त्री नगर में 1991 से 1995 तक योग क्लास **(Class)** दी। आदरणिय वैद्य जी के आदेश अनुसार इस केन्द्र का नाम चैतन्य योग संस्थान रखा गया। 1992 में **News Paper Daily Excelsior** में नाम प्रकाशित हुआ। उन महापुरुषों की संगति **(Guide line)** के आधार पर जो अनुभूतियाँ हुई उनसे लोगों को **Practical** शारीरिक लाभ हुए। उन के आधार पर 1994 में एक पुस्तक तैयार कर के लोगों की सेवा में लाई गई, जिस का नाम "चैतन्य योग दर्शन" रखा गया। परन्तु किन्हीं हालात के कारण इस का प्रकाशन जुलाई अगस्त 2002 में हुआ।

अब अनुभूतियों एवं अध्यन के आधार पर श्री सदगुरु जी की कृपा से यह पुस्तक आप तक पहुँच रही है।

ओम शान्तिः शान्तिः शान्तिः

ध्यान

ध्यान के विषय में बहुत कुछ लिखा गया, कहा जाता है परन्तु किसी की पकड़ में नहीं आता। इस का कारण यह है कि ध्यान ईश्वर की तरह अनुभूति की चीज़ है। यह तर्क–विर्तक या अध्यन की चीज़ नहीं है। ध्यान पकड़ में अनुभव एवं अभ्यास से ही आएगा। मन ही मनुष्य के मोक्ष तथा बँधन का कारण है।

मनुष्य खाली मांस, मज्जा और हड्डी का ही पुतला नहीं है। परन्तु उस में मन भी है। मन में भिन्न भिन्न प्रकार के विकार और संस्कार भरे पड़े हैं। बचपन से मन पर जिस जिस विषय का प्रभाव पड़ा है वहीं उस का कुछ न कुछ असर पड़ा है। जिस समय उस पर काम, क्रोध, अंहकार और राग द्वेष का ज़ोर पड़ता है तो उसी समय उस का प्रभाव शरीर पर, श्वास और मन पर, पड़ता है। क्रोध में शरीर पर Control खत्म हो जाता है। गति बदल जाती है। शरीर कांपने लगता है, रंग पीला पड़ जाता है। शरीर पर दिखाई देने वाले प्रभाव से कहीं अधिक प्रभाव मन पर पड़ता है। यह सब संस्कारों के रुप में मन के किसी न किसी भाग में थमे रहते हैं। ध्यान सब के लिए आवश्यक है। इस के बिना जीवन दिन प्रतिदिन कठिनाइयों में धंसता जा रहा है। ध्यान लगे या न लगे, हर व्यक्ति को 10–15 मिन्ट अभ्यास करना चाहिए। इस पुस्तक में कुछ मौलिक–बुनियादी प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयास कर रहा हूँ। ताकि कुछ–कुछ आप की समझ में आ जाए। आप की पकड़ में आ सके, आप गहराई में उतर सकें।

ध्यान क्या है, मौलिक प्रश्न क्या है। ध्यान क्यों करें। कैसे और कब करें।

ध्यान की व्याख्या करना इतना ही कठिन है जैसे आकाश को घड़े में बन्द करना, गागर में सागर को भरना।

जैसे सुन्दरता, अच्छाई या भगवान की व्याख्या करना कठिन है। इन सब चीज़ों का अुनभव किया जा सकता है परन्तु वर्णन करना सरल नहीं है। इन्हे शब्दों में बाँधना सरल नहीं है। ऐसी चीज़ों की परिभाषा अपूर्ण होगी। फिर भी हम समझानें के लिए इन चीज़ों की परिभाषा करने का यत्न करते है। इसी सोच से ध्यान का वर्णन भी किया जाता है।

ध्यान को हम यूं भी कह सकते हैं कि ध्यान चित्त की निर्विकार अवस्था है। जब हमारा मन एकाग्र हो कर शान्त अवस्था में आता है, तब ध्यान लगता है। खाली चेतन **(Concious)** मन ही नहीं केवल अवचेतन और अचेतन **(Sub concious and unconciousness)** जब तक मन सक्रिय है तब तक मन नहीं लग सकता।

चेतन + अवचेतन + अचेतन = 3 स्तरों को मिला कर चित्त बनता है।

इसी लिए (महार्षि) पतंजिल जी ने योग की परिभाषा देते हुए कहा है "योगः चित्त वृति निरोधः"

योग चित्त की वृतियों **(Tendencies)** का निरोध या रुक जाना।

मन की क्रियाएँ, क्रिया क्लाप तीनों स्तरों पर बन्द हो जाते हैं। तब हम ध्यान की गहराई, समाधि में पहुँचते हैं। यह वह अवस्था हैं जब शरीर और मन के पार – आत्मा के स्तर पर पहुँच जाते हैं। यह शुद्ध चेतन है। चेतन और कुछ भी नहीं। वहाँ पहुँचने पर परम आनन्द की अनुभूति होती है। **Technique** या

प्रक्रिया के हिसाब से हम यूँ कह सकते हैं कि अन्तर्जगत की यात्रा या आत्मानुसंधान का ऐसा तरीका जिस के द्वारा साधक अपने अस्तित्व की गहराइयों में प्रविष्ट होता है। यहाँ पर वास है जीवन स्तोत्र का। शान्ति और आनन्द का।

ध्यान मन की इस खण्डित और द्वन्द्वात्मक स्तर के पार जाने का नाम है। ध्यान की परिभाषा निम्न शब्दों में ही कर सकते हैं।

ध्यान क्यों करे।

ध्यान क्यों लगाया जाए।

इस के पहले हमें देखना है कि ध्यान में हम करते क्या हैं और करना क्या है। ध्यान के द्वारा हम सोई हुई शक्तियों को जागृत करते हैं।

अष्टांग योग के अनुसार हमारा शरीर सात हिस्सों यानि की सात चक्रों में बंटा हुआ है। सात हिस्सों को हम शास्त्रिय भाषा में साधना चक्र कहते हैं।

इन का सम्बन्ध "कुण्डलिनी शक्ति" से है।

कुण्डलिनी क्या है। इस का वर्णन करने का प्रयत्न कर रहा हूँ।

कुण्डलिनी

कुण्डलिनी महाशक्ति प्रकृति सर्वोच्च उर्जा है, महाशक्ति है। यह महाशक्ति सुप्त अवस्था में मूलाधार चक्र की जड़ में साढ़े तीन चक्र लगा कर नीचे की तरफ मुहँ कर अपनी पूंछ अपने ही मुंह में दवा कर विराजमान है। मस्ती मे बैठी हुई है। उर्जा शक्ति होने के कारण यह महाशक्ति सुप्तावस्था में भी मनुष्य के शरीर में अपना कार्य करती है। कुण्डलिनी को

जानने से पहले, सातों चक्रों का ज्ञान होना बहुत ज़रुरी है। इस के साथ–साथ साधक को शरीर तन्त्र का पूरा ज्ञान होना जरुरी है।

सत्यता यह है कि प्राणों को नियंत्रित कर के ही कुण्डलिनी शक्ति जागृत की जाती है।

श्री योगीश्वर भगवान शंकर जी ने नियंत्रित करने के लिए 400 विधियां बताई हैं। मन, प्राण को शान्त करने वाली विधियों में से किसी विधि को अपनाकर अपने प्राणों की कुण्डलिनी महाशक्ति हेतु शुद्ध कर सकता है।

शक्तिपात भी एक चम्तकारक मार्ग है। यह केवल योग्य गुरु के द्वारा ही सम्भव है। यह कुण्डलिनी महाशक्ति निरन्तर ध्यान साधना करने से, गुरु कृपा, ईष्ट कृपा से भी जागृत हो जाती है। पुराने समय से ही योग विज्ञान के अंर्तगत विभिन्न योग क्रियाओं का विस्तार के साथ वर्णन है।

जैसे पातंजल योग, मंत्र योग, ध्यान योग, तन्त्र योग, स्वर योग, जप योग, शक्ति योग इत्यादि। कितने ही योग मार्गों का **Detail** में विस्तार रुप से हमें शास्त्रों में वर्णन मिलता है।

इन योग साधनाओं का नियमित अभ्यास करने से साधक की सब से बडी शक्ति का आधार, परम महाशक्ति कुण्डलिनी के ध्यान की गहराई एकाग्रता की स्थिति उत्पन्न होने लगती है। उस समय शक्ति दायनी कुण्डलिनी स्वरुपा सिद्धि के स्थल में, एक विशेष प्रकार की स्पन्दन **(Sensation)** शुरु हो जाती है। कई साधकों के प्रारम्भिक समय में ही साधारण सी स्पन्दन **(Sensation)** होने लगती है। अगर साधक को किसी भी योग चक्र को थोड़ा सा भी जागृत करना हो तो उसे उसी

चक्र पर ध्यान को केन्द्रित करना चाहिए। ऐसा करने से उस स्थान पर चक्र पर दिव्य शक्ति निवास करती है, धीरे–धीरे जागृत होने लगती है, विकसित होने लगती है।

सब से पहले मूलाधार चक्र में (लं) शब्द है। यह इस का बीज मंत्र है। इस का निरन्तर जप करने से और ध्यान करते रहने से, इस चक्र की शक्तियों का उदय होता है। कुण्डलिनी जगाने से पूर्व साधक के लिए जरुरी है कि वह लगातार अभ्यास और साधना से मूलवन्ध को, मजबूत करे परिपक्व अवस्था में पहुँचा दे।

''मूलवन्ध'' साधना की परिपक्व अवस्था को प्राप्त होते ही साधक की संकल्प एवं धारण शक्ति अत्यन्त प्रवल हो जाती है।

साधक की वाणी, आकृति एवं दृष्टि में एक विशेष आकर्षण उत्पन्न हो जाता है। उसी में सम्मोहन शक्ति का विकास भी होता है। साधारण-व्यक्ति स्वाभविक ही उस की और आकर्षित होने लगते हैं। सम्पर्क स्थापित होने पर उन्हे साधक का ध्यान बार–बार आता रहता है। कुण्डलिनी शक्ति को जगाने के लिए ''मूलवन्ध'' ही महाशक्तिशाली सशक्त माध्यम है। उस की कुंजी है। यह तथ्य साधक भली भांति जान लें, समझ लें कि इस मार्ग पर चलते हुए ''मृत्यु'' तो कभी भी नहीं हो सकती क्योंकि इस मार्ग पर चलने से मृत्यु पर विजय प्राप्त कर ली जाती है। आखिर में मैं यही कहना चाहूँगा की जो साधक अपनी मानसिक इच्छाओं, कामनाओं या जो भी अनुचित्त वृत्तियाँ हैं, उन सब पर साधना द्वारा अंकुश लगा लेता हैं। अँकुश लगाने की इच्छा शक्ति प्राप्त कर लेता है। अभिमान के बिना, आत्म विश्वास के साथ योग साधना निरन्तर करता है।

साधक को इस महाशक्ति की साधना का अधिकार प्राप्त हो जाता है। जो बिना गुरु, जल्दी–जल्दी, बिना निर्देश साधना शुरु करता है, उस का शीघ्र पतन हो जाता है।

ध्यान क्यों

जितने भी लोग अलग अलग योग केन्द्रों, संस्थानों से जुड़े हुए हैं, जो आसन प्राणायाम का नित्य आम्यास करते हैं, उन्हें कुछ न कुछ तो लाभ होता है, तभी वह वहाँ जाते हैं। निद्रा का त्याग कर के प्रातः शीघ्र पहुँचते हैं, ऐसे तो कोई प्राणी भी समय बर्बाद नहीं करता। स्वास्थय में सुधार आए या मन एकाग्र हुआ हो या शान्ति प्राप्त होती हो इसलिए आसन प्राणायाम अच्छे नतीजे ला रहे हैं। परिणाम आशा से अधिक अच्छे हैं। योग के नियमों पर चलने से एक अच्छा योगी बन सकता है। अगर योगी न बने तो कुछ न कुछ उधार की और अग्रसर होगा। जीवन का कुछ मार्ग निकलता है।

योग के आठ अंग हैं

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। हमें योग के आठों अंगों का थोड़ा–थोड़ा अभ्यास करना चाहिए।

योग का लक्ष्य है, परमात्मा की अनुभूति, परमानन्द की प्राप्ति। केवल आसन–प्राणायाम से सम्भव नहीं हैं। इसके लिए अष्टांग योग पर चलना आवश्यक है।

जीवन में सुख दुख आते–जाते हैं। धूप के साथ छाया, धन के साथ निर्धनता, रात के साथ ब्रह्ममहूर्त, देवताओं के संग राक्षस। सुख–दुख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। दो

sides हैं। आते हैं, जाते हैं। सदा टिकने वाला कोई नहीं है। दुनिया, यह जगत क्षणभंगुर है, द्वान्द्वात्मक है, नाशवान है। दुनिया की जो चीज़ भी हम प्राप्त करें, वह रहने वाली नहीं है। उस से प्राप्त सुख भी क्षणभंगुर और नाशवान होगा। श्री ''कृष्ण जी'' ने श्री गीता जी में जैसे कहा है कि स्थिर बुद्धि वाला व्यक्ति कहीं भी किसी भी परिस्थिति में घबराता नहीं है। स्थिर बुद्धि वाला व्यक्ति, राग द्वेष, भयक्रोध और डर से मुक्त होता है। संसार में हम जितनी भी धन–दौलत ,मान – सम्मान, बड़े से बड़ा पद प्राप्त कर लेते हैं, उससे मिलने वाला सुख तनिक मात्र होगा। मिठाई – फल खाने से आप को आनन्द आ रहा है परंतु कब तक! अन्त में आप ऊब जायेंगे। ऊब जाने पर सुख, दुख में बदल जायेगा। यह जो साँसारिक सुख है, वह शरीर और मन के स्तर **(level)** पर अनुभव महसूस किया जाता है परंतु ध्यान का आनन्द आत्मा के स्तर पर महसूस किया जाता है। शरीर और मन दुनिया की अस्थाई चीजें है। रहने वाली नहीं हैं। यह सब परिवर्तनशील हैं। जो लोग ध्यान की गहराई में गए हैं समाधि में उत्तरे हैं, उन्होंने महसूस किया है कि शरीर और मन से परे आत्मा का स्तर है। वहां कुछ बदलने वाला नहीं है। वहां पर हमें जिस आनन्द, सुख की अनुभूति होती है – वह स्थायी है–वह परिवर्तन शील नहीं है। शाश्वत है। कोई दुख–सुख, कोई उत्तार चढ़ाव नहीं कर सकता। कोई विचलित नहीं कर सकता। यह अनुभव उन को हुए, जो ध्यान की गहराई में उत्तरे हैं। वहां पहुंचने के लिए एक बड़ा ही वैज्ञानिक तरीका हमारे ऋषि–मुनियों ने बताया है। पाँतजलि का अष्टांग योग, एक ऐसा ही मार्ग है। यह मार्ग

बहुत ही वैज्ञानिक मार्ग है।

हम जीवन की **Materialistic** दौड़ में, जितनी भी भाग–दौड़ कर लें धन–दौलत या और समान जितना भी इकट्ठा कर सकते हैं कर लें, फिर भी अशांति और वेचैनी में ग्रस्त हैं। हर समय अशांति छाई रहती है। इस का कारण है कि हम सब परमात्मा से आए हैं और जब तक वहां नहीं पहुंच जाते, तब तक वेचैनी ही रहेगी। जैसे नदी, समुद्र से उठने वाली भाप, जो वर्षा और बर्फ के रूप में जमीन पर आती है, जब तक फिर समुद्र में विलीन नहीं हो जाती बेचैन रहती है। मानों हम उसे बाँध बना कर रोकें तो भी टकराती रहेगी। कब तक टकराती रहेगी। अपनी मंजिल पर पहुंचने तक। ध्यान यह एक वैज्ञानिक पद्धति है। जिस दौर से हम गुजर रहे हैं, यह **science** का युग है। आज के मनुष्य के लिए ध्यान पद्धति, दूसरी पद्धतियों भक्ति, वैराग्य आदि से अधिक अनुकूल हैं। यही कारण है कि योग–ध्यान अधिक लोकप्रिय होते जा रहे हैं। आसन प्राणायाम तक ही रूक जाते हैं। आगे बढ़ेंगे तो ध्यान की गहराई में जायेंगे।

ध्यान कब और कैसे करें।

ध्यान या कोई भी अध्यात्मिक साधना हो, उसके लिए सब से उत्तम समय है ब्रह्मबेला (ब्रह्ममहूर्त)। सूर्य निकलने के दो घँटे पहले यानि 6 बजे के भीतर–भीतर क्योंकि इस समय प्रकृति शान्त, मधुर और मौन होती है। कोई गाड़ियों का शोर नहीं होता। धूल नहीं होती। चारों तरफ वातावरण शान्त मिल जाता है। रात की निद्रा के बाद, मन भी शान्त होता है। अगर आप "ब्रह्मबेला" का उपयोग न कर सकें तो सन्ध्या बेला यानि शाम का समय भी प्रयोग कर सकते हैं। जब मन सध्या जाता

है, तब कभी भी गहराई में उत्तर सकते हैं। श्री ''राम कृष्ण परमहंस जी'' और श्री शिर्डी ''सांई बाबा जी'' बात करते ब्रहम अवस्था में होते थे, हम यूं कह लें तो बहुत ही अच्छा हो कि वह रहते ही 24 घण्टे ब्रह्म अवस्था में थे।

ध्यान कैसे करें

इस की नाना प्रकार की विधियां हैं **(Techniques)** हैं। आते–जाते श्वास पर ध्यान, शरीर में होने वाली क्रिआयों या विचारों पर ध्यान, भृकुटि पर ध्यान, नासिका के अग्रभाग पर ध्यान, ध्यान चक्रों पर ध्यान। शुरू में साधक को कई विधियो पर अभ्यास करना चाहिए। जो विधि सरल समझें, उपयुक्त समझें, उसी पर टिक जाएं। जिस विधि से मन को शांति मिले, वही विधि अपना लेनी चाहिए और अभ्यास प्रतिदिन करना चाहिए। ध्यान करने से पहले कुछ शारीरिक अभ्यास करें। फिर कुछ प्राणायाम क्रिया करें। ध्यान के लिए यह सब ज़रूरी है ताकि मानसिक एवं शारीरिक थकावट या निद्रा तंग न करे, विघ्न न डाले। मन बहुत ही चंचल है। यह बात तो हर मनुष्य जानता है। यह मछली की तरह, एक मिन्ट भी कहीं टिकने नहीं देता। नियमित अभ्यास और वैराग्य द्वारा **(Detachment)** द्वारा धीरे–धीरे काबू पाया जा सकता है। ''श्री कृष्ण जी'' गीता जी में बार–बार दोहरा रहे हैं (बता रहे हैं) शुरू में कामयाबी न मिले तो घबराना नहीं चाहिए।

ध्यान किस लिए करें–

ध्यान करने वाले साधक या योगी का मन शान्त होता है। मन स्थिर हो जाता है। मानसिक एवं शारीरिक लाभ भी होते हैं। सुख–दुख उसे विचलित नहीं कर सकते। उसे परेशान

नहीं कर सकते क्योंकि वह स्थिर हो चुका होता है। सुख–दुख की परिभाषा जान चुका होता है। वह न दुख में घबराता है न सुख में खुश होता है। संसार में जो कुछ भी हो रहा है, वह दृष्टा भाव से देखता है। वैज्ञानिकों ने **Experiments** कर के देखा है कि ध्यान की साधारण अवस्था में भी मस्तिषक में "अल्फा" तरंग चलने लगती है। जिससे साधक को शान्ति और आनन्द का एहसास होने लगता है। हमारे शरीर की सोई हुई ग्रन्थियां भी जागृत हो जाती हैं। आज का युग तनाव और **Race - Tension** का युग है। इसलिए ध्यान की युक्ति बहुत लाभकारी और आवश्यक है। जिससे हमारे जीवन में सुख और शान्ति का वास हो जाता है।

कुछ विस्तार से उदाहरण मान लो मनुष्य सोया नहीं है, जाग रहा है, अपना मकान, गाड़ी, जमीन – जयदाद, पत्नी – बच्चे देख रहा है परंतु रहता बेचैन है। उसे इन सब को देख कर प्रसन्न रहना चाहिए, शान्त होना चाहिए परंतु रहता बेचैनी और घबराहट में है। जब सो जाता है, तब सब कुछ गायब हो जाता है, ओझल हो जाता है। कुछ भी दिखाई नहीं देता। सत्यता में चला ज़ाता है। जब नींद से उठता है तो कहता है–कभी थोड़ी नींद और आ जाती तो कितना आनन्द होता । कितना आनन्द आ रहा था। इसका अर्थ है कि जो वस्तुंए दिख रहीं है, वह सब नाशवान हैं तो नाशवान में शान्ति कहां। जो नहीं दिख रहा था – वह शाश्वत था। उस में सुख ही सुख था इसलिए हमारे भारतीय ऋषियों ने सोचा कि अपने अन्दर जा कर देखें। अन्दर में प्राप्त होने वाला सुख भी क्षणभंगुर तो नहीं है परंतु अन्तर जगत की यात्रा के बाद जिस

आनन्द के स्त्रोत का पता लगाना भारत की सब से बड़ी देन है, यह महसूस हुआ कि हमारे अन्दर एक ऐसे तत्व का निवास है जो अपरिवर्तनशील (न बदलने वाला) चेतन और आनन्दमय है। उन्होंने इसे 'सच्चिदानन्द' या फिर सत्त – चित्त आनन्द कहा है। अन्दर की खोज से पता चला कि हम केवल हड्डियों, मांस और मज्जा का पुतला मात्र नहीं हैं। हम इससे परे हैं। शाश्वत और आनन्द स्रोत हैं तो हम आनन्द को प्राप्त क्यों नहीं कर सकते। इसकी प्राप्ति में सब से बड़ी बाधा–मन है। मन साथी भी – अभिशाप भी और वरदान भी है। इसलिए कहते हैं कि मन और मस्तिष्क के कारण मनुष्य आज पृथ्वी का राजा बना हुआ है। इसकी कृपा के कारण उसने प्रकृति के कई रहस्यों का उद्घाटन किया है। विज्ञान के क्षेत्र में उसने कई उपलिब्धयां की हैं।

अभिशाप इस लिए कि इसके कारण कष्ट भी सहे हैं। अशान्ति और बेचैनी का मुख्य कारण मन ही है। मन हमेशा विचारों के जाल बुनता रहता है। गहरी निद्रा के वक्त ही, थोड़ी शान्ति मिलती है। गहरे ध्यान में अशान्ति से मुक्ति मिलती है। मनुष्य सभी प्राणियों से बुद्धिमान है परन्तु मन की चंचलता के कारण ही सब से अशान्त है। कोई भी जीव मनुष्य की तरह अशान्त और बेचैन नहीं है, परन्तु मनुष्य मानसिक तनाव के कारण ही **Hypertension, Blood Pressure, Heart** एवं **Mental problem** से ग्रस्त है। दूसरे प्राणियों की ज़रूरतें भी वैसी ही हैं परंतु इतने परेशान नहीं हैं, जितना मानव। इस लिए अभिशाप कहा गया है। ध्यान इस पर काबू पाने का ही नहीं परन्तु इस के पार जाने का बढ़िया वैज्ञानिक तरीका है। इस लिए श्री पातंजलि योग सूत्र में कहा गया है

– "योग चित्तः वृत्ति निरोधः"। सम्पूर्ण मन की वृतियों का निरोध, ठहराव या नियंत्रण है। ध्यान, समाधि की पूर्व अवस्था है और सफल ध्यान ही समाधि से परिचित हो जाता है।

मन, आत्मानुभूति में वाधा पहुंचाता है। अब प्रश्न है कि मन, दरिया या तालाब की भांति कैसे है। इस में विचारों की लहरें, राग द्वेष की लहरें उठती रहती हैं। जब तक यह लहरें उठती रहेंगी, तब तक उस तालाब के अन्तर स्थल में छिपे हुए विराजमान मोतियों को हम देख नहीं सकते। लहरें शान्त हो जाएँ, तब हमें शुद्धतत्व के दर्शन हो जाते हैं। यह मन रूपी दर्पण है, यह विचारों, वासनाओं और इच्छाओं की धूली से ढका हुआ है। ऐसे में हम आत्मा के दर्शन नहीं कर सकते। जब तक विचारों की धूलि, वासनाओं की धूलि से दर्पण साफ न हो, तब तक आत्मा का दर्शन सम्भव नहीं हो सकता। इसलिए यह सब करने के लिए हमें अन्तरस्थल की गहराई में जाना है। तभी शान्ति प्राप्त होगी। शुद्ध तत्व का दर्शन कर सकते हैं। श्री गुरूदेव जी हमारा मार्ग दर्शन करते हैं। आत्मानुभूति के लिए बहुत से मार्ग हैं। ध्यान योग, भक्ति योग, ज्ञानयोग, कर्मयोग आदि। आज के **Scientific** यानि वैज्ञानिक युग में ध्यान योग सब से उत्तम प्रयोग है। जैसे की **Laboratory** के अन्दर सांइसदान **(scientist) Practical experiments** करते हैं, ध्यान योग भी पूर्ण उसी तरह है।

इस सत्यता को प्राप्त करने के लिए गहराई में उतरने के लिए अष्टांग योग को अपनाना बहुत ज़रूरी है। इसके बिना सफलता सम्भव दिखाई नहीं देती।

अष्टांग योग पातंजलि ऋषि जी ने आज से हजारों

वर्ष पूर्व ध्यान विज्ञान का सार अपने सूत्रों में भर दिया था। जैसे गागर में सागर भर दिया है। उनके यह सूत्र इतने वैज्ञानिक और **Mathematically** ढंग के साथ लिखे गए हैं, जिन में सुधार की कोई गुंजाइश नहीं रही है। ऐसे तो बहुत सी पुस्तकों में बहुत कुछ वर्णन है, पुस्तक "हिन्दू धर्म" की विशेषताओं पर लिखी गई है। परंतु "पतंजलि कृतयोग" एक पलड़े में रख दिया जाए और सब पुस्तकें एक पलड़े में रख दी जायें तो पतंजलि कृत योग का पलड़ा भारी होगा। जिस प्रकार से क्रमिक विकास द्वारा मानव के अन्दर प्रसुप्त अध्यात्मिक शक्तियों को करते–करते चरम सीमा तक पहुंचने का वर्णन उपलब्ध है। इसे हम मनोविज्ञान का भी उत्तम, श्रेष्ठ ग्रन्थ कह सकते हैं।

पतंजलि – अष्टांग योग के आठ अंग हैं।

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धरणा, ध्यान और समाधि।

ध्यान का वैज्ञानिक तरीके से सीधा संबंध प्रत्याहार और धारणा से है।

हम यहां केवल तीनों का वर्णन करेंगे।

यम, नियम, प्राणायाम, आसन और प्रत्याहार बाहरी अंग हैं। धारणा, ध्यान और समाधि अंतरिक अंग हैं। प्रत्याहार वहिरंग की अन्तिम कड़ी है। प्रत्याहार, ध्यान और धारणा अलग–अलग अंग हैं परंतु वह एक दूसरे से जुड़े हुए हैं क्योंकि ध्यान की प्रक्रिया में एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। पतंजलि जी के अनुसार इन्द्रियों का अपने विषयों में से संबंध तोड़ना है। प्रत्याहार जैसा मैने पहले भी बताया है कि प्रत्याहार

दो शब्दों से बना है–

प्रति + आहार–आहार का अर्थ भोजन है और प्रति का अर्थ है विरोध या उल्टा, प्रत्याहार का शब्दिक अर्थ हुआ विरोध या भोजन न करना। अब बात है इन्द्रियों के भोजन की। साधारण भोजन की नहीं। इन्द्रियों का भोजन जिसका संबंध मुंह या जीभ से है। हमारी पांच ज्ञानन्द्रियां हैं – आंख, जीभ, नाक, कान और चर्म (चमड़ी) इन का भोजन इस प्रकार से है। आंख को – "रूप", जीभ को –"रस", नाक को – "गन्ध", कान का "शब्द" (ध्वनि) और "त्वचा" को स्र्पश। बाहरी संसार का ज्ञान इन्हीं से है। प्रत्याहार की वैज्ञानिक क्रिया के द्वारा हम इन्द्रियों का संर्पक बाहर जगत से तोड़ देते हैं। जब हम ऐसा कर सकेंगे तभी अन्दर की यात्रा कर सकेंगे। प्रत्याहार से अन्दर की यात्रा का पहला कदम शुरू होता है। जिस चीज की शुरूआत ठीक हो, उस का अन्त भी ठीक होता है। जब तक ज्ञान इन्द्रियों का सर्म्पक बाहर की दुनियां से पूरी तरह नहीं टूटता, तब तक हम अन्दर की यात्रा में सफल नहीं हो पाते। ध्यान की सफलता ज्यादा प्रत्याहार पर निर्भर करती है। हम आंखें बन्द कर के बैठ जाते हैं। कान और मुंह बन्द कर लेते हैं परन्तु अन्दर से बाहरी जगत का विचार चलता रहता है। कानों से सुनते रहते हैं तो ध्यान नहीं लग सकता और न ही लग पायेगा। संत कबीर जी ने अपनी वाणी में फरमाया है।

। माला तो कर में फिरे – जीभ फिरे मन मांहि

! मनुआ तो चहुं दिशि फिरे – यह तो सुमरिन नांहि

जब तक हमारा मन इधर–उधर भाग रहा है, भटक रहा है, तब तक हम अन्दर की गहराई में नहीं उतर सकते। ध्यान नहीं

लग सकता। जिस वस्तु पर हमारा ध्यान है, धारणा है, जब तक उसमें राम नहीं जाते तब तक ध्यान कैसे लग सकता है।

धारणा : धारणा से ध्यान और समाधि होती है। यह योग का छठा अंग है। चित्त को किसी एक देश या एक विशेष वस्तु में स्थिर करने का नाम धारणा है। किसी एक ध्यये स्थान में चित्त को बांध देना, लगा देना, धारणा कहलाता है। शुरू शुरू में बाहरी विषयों पर धारणा करना ही ठीक है।

हमारी इन्द्रियों की जो सहज वृत्ति है, वह बाहर मुखी है। हजारों व्यक्ति ध्यान करने और समाधि लगाने की कोशिश करते हैं परन्तु उन्हें सफलता नहीं मिलती। इस का कारण है कि समाधि की सिद्धी के लिए यम नियमों का पालन पूर्ण रूप से नहीं हुआ। उन में कोई कमी रह गई है। समाधि के लिए नियमों का पालन करना अति आवश्यक है। इनके बिना ध्यान और समाधि का सिद्ध होना बहुत कठिन है। झूठ, कपट, चोरी और व्यभिचार इत्यादि। दुराचार की वृत्तियों के नष्ट हुए बिना, ध्यान और समाधि नहीं हो सकते। ध्याना समाधि की इच्छा वाले पुरूषों को योग के आठों अंगों की साधना करनी चाहिए। जैसे बुनियाद के बिना मकान नहीं ठहर सकता, ऐसे ही यम नियमों के पालन किए बिना ध्यान और समाधि का सिद्ध होना असम्भव सा है। बुद्धिमान पुरूषों को चाहिए कि वह निरन्तर यमों का पालन करते हुए ही नियमों का पालन करें। जो यम का पालन न कर के निमयों का ही पालन करते हैं, वह साधक पथ से गिर जाते हैं। योग में सिद्ध अवस्था चाहने वाले पुरूष को यम नियमों का पालन आवश्यमेव करना चाहिए। इन के पालन से चोरी, झूठ और कपट आदि दुराचारों,

काम, क्रोध, मोह और लोभ आदि दुर्गुणों का नाश हो कर, अन्तकरण की शुद्धता, पवित्रता होती है। उसे में उत्तम गुणों का समावेश हो कर ईष्ट देवता के दर्शन और आत्मा का साक्षात्कार होता है। साधक जैसा चाहता है, वैसा हो जाता है। यम–नियमों के पालन बिना समाधि तो दूर की बात है, अच्छी तरह से प्राणायाम भी नहीं होता। यह होना भी कठिन है। यत्न करने पर भी सफलता नहीं मिलती। काम, क्रोध, लोभ और मोह आदि दुर्गुण एवं झूठ, कपट और चोरी व्यभिचार आदि दुराचार एवं प्राणायाम विषयक क्रिया के ज्ञान का अभाव ही सफलता में बड़ी बाधक है। इसलिए ध्यान – साधना करने वाले साधकों के दोषों का नाश करने के लिए, पहले यम–नियमों का पालन करके ही योग के अन्य अंगों का अनुष्ठान करना चाहिए। जो साधक इन आठ अंगों का अच्छी प्रकार पालन कर लेते हैं, उन का अन्तः करण शुद्ध होने पर ज्ञान की आपार दीप्ति हो जाती है। इसी से इच्छा अनुसार सिद्धियां प्राप्त हो सकती है। जो पुरूष सिद्धियां नहीं चाहते, वह क्लेश और कर्मों से छूट कर आत्मसाक्षात्कर कर लेते हैं। यम – नियम – आसन – प्राणायाम – प्रत्याहार – धारणा – ध्यान और समाधि यह योग के आठ अंग है।

इनकी दो भूमिकाएं हैं (1) वहिरंग (2) अन्तरंग। उपर बताए हुए आठ अंगों में से पहले पांच को वहिरंग कहते हैं इन का विशेष तोर पर बाहर की क्रियाओं से ही सम्बन्ध है। शेष तीन धारणा, ध्यान और समाधि अन्तरंग हैं। इस का सम्बन्ध केवल अन्त' करण से होने के कारण उन को अन्तरंग कहते हैं। पातंजिल जी ने इन को संयम कहा है त्रयमेकत्र संयमः

इन आठों अंगों का संक्षिप्त विवेचन किया जाता है।

अहिंसा सत्य – अस्तेय – ब्रह्मचर्य और ऊपरिग्रह। इन पांचों का नाम "यम है" किसी भूत प्राणी को या अपने को भी मन – वाणी शरीर द्वारा कभी किसी प्रकार थोड़ा भी कष्ट न पहुंचाने का नाम "अहिंसा है"

सत्य अन्तःकरण इन्द्रियों द्वारा जैसा निश्चय किया हो हित की भावना से कपट रहित। प्रिय शब्दों में वैसे का वैसा प्रकट करने का नाम "सत्य है"

अस्तेय मन – वाणी – शरीर द्वारा किसी के हक को चुराना अस्तेय कहलाता है।

ब्रह्मचर्य। मन – इन्द्रिय और शरीर द्वारा होने वाले काम विकार सर्वथा अभाव का नाम "ब्रह्चर्य" है।

अपरिग्रह शब्द – र्स्पश – रूप – रस – गंध आदि किसी भी सामग्री का संग्रह न करना अपरिग्रह है। इन पांचों "यमों" का सवजाति–स्वदेश और सवकाल में पालन होने से और किसी भी नमित से इन के विपरीत हिंसा आदि दोषों के न घटने से इन की संज्ञा महाव्रत हो जाती है।

जाति देशकाल समयानवच्छिनः सार्व भौमा माहव्रतम

जाति – देशकाल और नमित से अववच्छिन्न यम का सार्व भौम पालन महाव्रत होता है।

भिन्न भिन्न खण्डों – देशों – प्रान्तों – स्थानों एवं तीर्थ अतीर्थ – आदि के भेद से यम के पालन में किसी प्रकार का भेद न रखने से – वह देशगत सार्वभौम महाव्रत होता हैं।

वर्ष – मास – पक्ष – सप्ताह – दिवस – मुहूर्त – नक्षत्र एवं पर्व–अर्पव आदि के भेदों से यम के पालन से किसी प्रकार का भेद न रखना कालगत – सार्वभौम माहव्रत होता है यज्ञ – देवपूजन – श्राद – दान – विवाह – न्यायालय अर्जीविका आदि के भेदों से यम के पालन मे किसी प्रकार का भेद न रखना। समय (निमित) सार्व भौम महाव्रत है।

निमय

शौचसंतोषतपः स्वाध्यायेश्ववरप्रणिधाननि नियमः(योग

असम्प्रज्ञातसमाधि
सम्प्रज्ञातसमाधि
ध्यान
धारणा
प्रत्याहार
प्राणायाम
आसन
नियम
अष्टांग योग
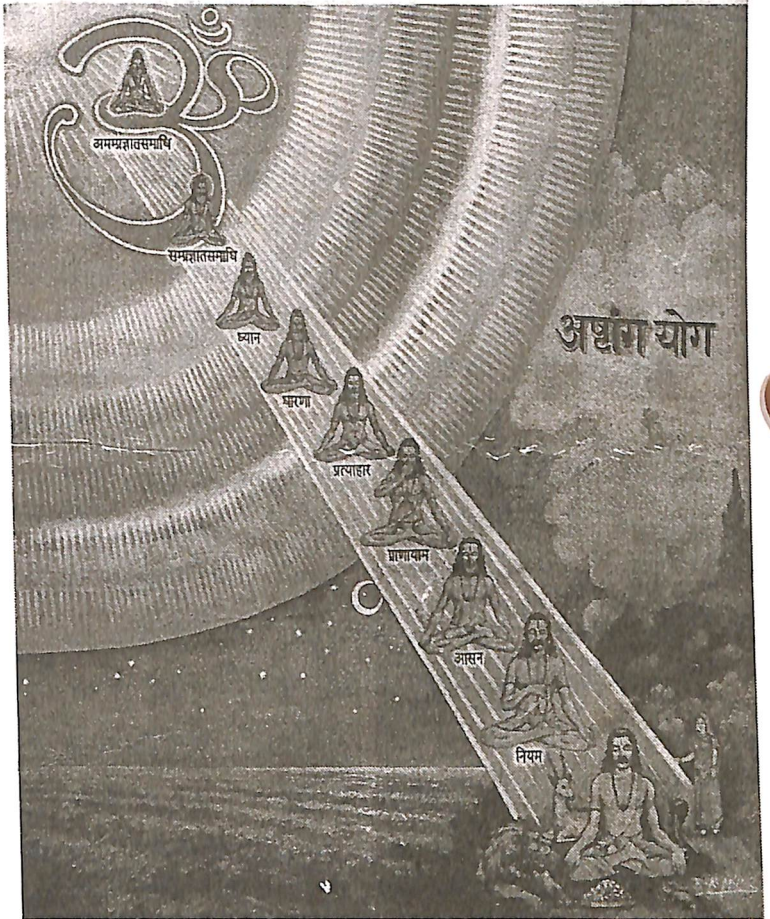
दर्शन)2 / 32

"पवित्रता" – "संतोष" – "तप – स्वाध्याय" और "ईश्वर प्राणिधान ये पांच नियम है।

पवित्रता दो प्रकार की होती है।

(1) बाहरी (2) भीतरी

जल – मिट्टि से शरीर की स्वार्थ – त्याग से व्यवहार और आचरण की तथा न्यायोपर्जित – द्रव्य से प्राप्त सात्विक पदार्थों के पवित्रता पूर्वक – सेवन से आहार की। यह वाहरी पवित्रता है। अहंता – ममता – राग द्वेष – ईष्या – भय और काम क्रोध आदि – भीतरी – र्दुगुणों के त्याग से भीतरी – पवित्रता होती हैं।

सुख–दुख – लाभ – हानि – यश – अपयश – सिद्धि – असिद्धि अनुकूलता – प्रतिकूलता आदि प्राप्त होने पर सदा – सर्वदा सन्तुष्ट रहने का नाम "संतोष" है।

मन और इन्द्रियों के संयम रूप धर्म – पालन करने के लिए कष्ट सहने को और व्रत आदि का नाम "तप" है।

कल्याण आदि

कल्याण पर्द शास्त्रों का अध्ययन और ईष्ट देव के नाम का जप तथा स्त्रोादि पठन – पाठन और गुणनुवाद करने का नाम "स्वाध्याय" है।

ईश्वर की भक्ति – मन – वाणी और शरीर द्वारा – ईश्वर के अनुकूल ही चेष्टा करने का नाम "ईश्वर प्राणीधान" है। यम और नियमों के पालन में बाधक हिंसा। विपरीत वृतियों के नाश के लिए महार्षि पतंजलि "उपाय" बताते हैं। हिंसा आदि

विर्तक से बाधा होने पर प्रतिपक्ष का चिन्तन करना चाहिए।

विर्तका हिंसादयः कृतकारितानुमोदिता – लोभ – मोह – क्रोधपूर्वक मृदुम ध्याधिमात्रा दुःखाज्ञानानन्तफला इति प्रतिपक्षभावनम्

कृत कारित और अनुमोदित – भेद से लोभ – क्रोध और मोह के हेतु से मृदु – मध्य से और आदि मात्र स्वरूप से यह हिसादि विर्तक अनन्त दुख और अज्ञानरूपी फल के देने वाले हैं, ऐसी भावना का नाम प्रतिपक्ष भावना है। हिंसा – असत्य – चोरी व्यभिचार भोग पदार्थों का संग्रह अपवित्रता और असंतोष की वृति एवं तप स्वाध्याय एवं ईश्वर प्राणिधान के विरोध की वृति इन का नाम विर्तक है।

यम नियमों के पालन का महानफल

अंहिसा रूपी महाव्रत के पूर्ण पालन होने पर उस योगी के समीप दूसरे प्राणी भी बैर का अर्थात हिंसा वृति का त्याग कर देते हैं।

सत्य प्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम योग दर्शन 2/36

सत्य के अच्छे प्रकार पालन से उस सत्यवादी की वाणी सफल हो जाती है अर्थात् वह जो कुछ कहता है वही सत्य हो जाता है।

अस्तेय प्रतिष्ठायां सर्वरतोपस्थानम् योग दर्शन 2/37

चोरी की वृति का सर्वथा त्याग हो जाने पर उसे सब रत्नों की उपस्थिती हो जाती है, अर्थात् समस्त रत्न उस के दृष्टि गोचर हो जाते हैं। समस्त् जनता पूर्ण रूप से उस का पूर्ण विश्वास करने लग जाती है।

ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभः योग दर्शन 2/38

ब्रह्मचर्य का अच्छी तरह पालन होने पर यानि विषय – भोग पदार्थों के संग्रह का भली भांति त्याग होने पर वैराग्य और उपरति होकर मन का संयम होता है और मनः संयम से भूत, भविष्यत्, वर्तमान जन्मों का और उनके कारणों का ज्ञान हो जाता है।

शौचात्स्वांगजुगुप्सा परैरसंसर्गः पूर्णतया बाहर की पवित्रता से अपने अंगों में घृणा और अन्य मनुष्यों के संर्सग का अभाव हो जाता है। क्योंकि शरीरों में अरूचि हो जाने से उन का संर्सग नहीं किया जाता।

सत्वशुद्धि सौमनस्यै का ग्रेयन्द्रियजयात्मदर्शन योग्यात्वाणि योग दर्शन 2/41

अन्तकरण की पवित्रता से मन की प्रसन्नता और एकाग्रता, इन्द्रियों पर विजय और आत्मा के साक्षात दर्शन करने की योग्यता प्राप्त हो जाती है।

संतोषदनुतम सुखलाभः। योग दर्शन 2/42

संतोष से सर्वोतम सुख की प्राप्ति होती है।

कायेन्द्रियासिद्दिक्षयातपसः तप से मल दोष अर्थात् पापों का नाश हो जाने पर आणिकादि अष्ट काया की सिढ़ियां और दूर से देखना, सुनना – इन्द्रियों की सिधियां प्राप्त हो जाती हैं।

स्वाध्यायदिष्ट देवता सम्प्रयोगः

अपने ईष्टदेव के नाम का जप एवं स्वरूप गुण – प्रभाव और महिमा आदि के पठन – श्रवण – मनन रूप – स्वाध्याय से ईष्ट देव का साक्षात् दर्शन हो जाता है।

समाधिसिद्धिरी र प्राणिधानात

ईश्वर प्राणिधान से समाधि की सिद्धियां सफल होती हैं।

आसन और आसनसिद्धि का फल

आसन बहुत प्रकार के हैं। परंतु आत्मसंयम चाहने वाले पुरूष के लिए – "सिद्धासन" – "पदमासन" और "स्वास्तिकासन"। यह तीन आसन बहुत उपयोगी माने गए हैं। इनमें से कोई भी आसन हो – मेरूदण्ड – मस्तक और ग्रीवा को सीधा रखना चाहिए। दृष्टि नासिकाग्र पर या भृकुटि में रखनी चाहिए। आलस्य न सताए तो आंखे मूंद कर भी बैठ सकते हैं। मनुष्य जिस आसन में ज्यादा देर सुख पूर्वक बैठ सके। उसके लिए वही उत्तम आसन है। शरीर की स्वाभाविक चेष्टा के शिथिल करने पर अर्थात उन से आराम होने पर या अनन्त परमात्मा में मन के तनमय होने पर आसन की सिद्धि होती है। कम से कम एक पहर यानि 3 घण्टे एक आसन में स्थिर सुखपूर्वक अचल भाव से बैठने को आसनसिद्धि कहते हैं। आसनों की सिद्धि से (शरीर पूर्ण) रूप से संयत हो जाने के कारण शीतोष्णदि द्वन्द बाधा नहीं करते।

प्राणायाम प्राणायाम अनुभवी योगियों के पास रह कर ही उनसे सीखना चाहिए – गल्त करने से हानि भी हो सकती है।

तस्मिन् सति श्वास पश्वासयोगति विच्छेदः प्राणयाम

आसन के सिद्ध हो जाने पर श्वास और प्रश्वास की गति के अवरोध हो जाने का नाम प्राणायाम है। बाहरी वायु का भीतर में प्रवेश करना श्वास है और भीतर की वायु का बाहर निकालना प्रश्वास है इन दोनों के रूकने का नाम प्राणायाम है।

इन्हें रेचक और पूरक भी कहते हैं श्वास लेने को पूरक और छोड़ने के रेचक। देश–काल और संख्या (माता) के सम्बन्ध से ब्राह्य अभ्य·त्तर और स्तम्भवृति वाले ये तीनों प्राणायाम दीर्घ और सूक्ष्म होते हैं।

बाह्य कुम्भक भीतर के श्वास को बाहर निकाल कर बाहर ही रोक रखना बाह्य कुम्भकं कहलाता है।

विधि: इस की विधि यह है कि आठ प्रणव (ऊं) से रेचक कर के –' सोहलह के ब्राह्य कुम्कक करना और फिर चार से पूरक करना। इस प्रकार रेचक पूरक के सहित बाहर कुम्भक करने का नाम आभ्यन्तर बृति प्राणायाम है। बाहर या भीतर जहां कहीं भी सुख पूर्वक प्राणों के रोकने का नाम स्तम्भवृति प्राणायाम है।

श्वास लेना – रोकना और छोड़ना इन की मात्रा यानि की इस की **Ratio : 2:4** के हिसाव से रखनी चाहिए

इनके और भी बहुत से भेद हैं।

जितना काल पूरक में लगाया जाए उतनी संख्या और काल रेचक तथा कुम्भक में भी लगा सकते हैं। प्राणवायु का नाभि – हृदय – कण्ठ या नासिका के भीतर के भाग का नाम "आभ्यन्तर देश" है।

विधि। नासिकापुट से वायु का 12–16 अंगुल तक बाह्यदेश है।

2) साधक पूरक प्राणायाम करते समय नाभि तक श्वास को खींचता है – वह 16 अंगुल तक बाहर फैंके।

3) जो हृदय तक खींचता है वह 12 अंगुल तक फैंके।

4) जो कण्ठ तक श्वास खींचता है वह 8 अंगुल बाहर

निकाले।

5) जो नासिका के अन्दर ऊपर अंतिम भाग तक खींचता है वह चार अंगुल निकाले।

नाड़ी शोधन क्रिया

सब से सरल – बिना हानि

विधिः पदमासन – सिद्वासन – स्वस्ताकिासन – यह तीनों प्राणायाम के लिए सुन्दर आसन हैं – ना हो सकें तो जिस में आप आराम से बैठ सकें, बैठें।

गर्दन – रीढ़ की हड्डी सीधी रखें।

दायें हाथ के अंगूठे से दांयी नासिका बन्द कर लें। साथ वाली चार ऊंगुलियां सीधी रखें। वायीं नासिका से श्वास अन्दर भरे 6 या 12 दफा। फिर दांयी नासिका को बन्द करें, दांयी नासिका से श्वास छोड़े।

इस विधि से फिर बांयी नासिका से श्वास लें और दायीं तरफ से श्वास छोड़ें।

इसकी II Phasi दूसरी विधि

फिर कुम्भक – वाहरी – भीतरी

तीसरी विधि – नासिका बन्द नहीं करनी।

श्वास को लेना–रोकना और छोड़ना।

इसके अभ्यास से कुछ ही समय में चम्तकारिक प्रभाव शुरू हो जाते हैं।

प्राणायाम का फल

ततः क्षीयत प्रकाशावरणम् योगदर्शन 2/52

प्राणायाम के सिद्ध होने पर विवेक ज्ञान को आवृत करने वाले पाप और अज्ञान का क्षय हो जाता है। नाश हो जाता है। प्राणायाम की सिद्धि से मन स्थिर हो कर उस की धारणायों के योग्य सार्मथ्य हो जाता हैं।

ध्यान

चित्त वृति का गंगा के प्रवाह की भांति या अविच्छिन्नरूप से निरंतर ध्येय वस्तु में ही लगा रहना – ध्यान कहलाता है।

समाधि

ध्यान ही समाधि हो जाती है। जिस वक्त ध्येय स्वरूप का ही भान होता है। और अपने स्वरूप के भान का स्वभाव सा रहता है। ध्यान करते करते जब योगी का चित्त ध्येयाकार हो जाता है वह स्वयं भी ध्येय के तनमय सा बन जाता है। ध्येय से भिन्न अपने आप का उसे ज्ञान नहीं रहता। उस स्थिति का नाम समाधि है। ध्यान में ध्याता – ध्यान – ध्येय यह त्रिपुरी रहती है। समाधि तो केवल देववस्तु ही रही है अर्थात् ध्यान – ध्याता – ध्येय – इन तीनों की एकता सी हो जाती है। ऐसी समाधि जब स्थूल पर्दाथ में होती है तो उसे निर्विचार कहते हैं। इस लिए कल्याण चाहने वाले पुरूषों को अपने इष्टदेव परमात्मा के स्वरूप में ही समाधि लगानी चाहिए। इस में परिपकवता होने पर अतः पक्का होने पर उपयुक्त योग के आठों अंगों के भलि भांति अनुष्ठान से मल और दोषों का क्षय होने पर विवेक, ख्याति, प्रयन्त ज्ञान की दीप्ति होती है। उस विवेक ख्याति से अविधा का नाश हो कर (केवल्य) पद की प्राप्ति यनि आत्मसाक्षात्कार हो जाता है। धीरे–धीरे जब

थोड़ी–थोड़ी सफलता मिले – उस समय अर्न्तमुखी की ओर बढ़ना चाहिए। बाहर ध्यान करने के पांच मुख्य भेद हैं।

साधना की विधियां जैसे जल के – नदी के किनारे सरोवर के किनारे बैठकर जल की तरंगों को स्थिर दृष्टि से देखना।

पार्थिव धारणा आगे के चित्र पर – किसी देव मूर्ति पर गुरू जी की मूर्ति पर या किसी विशेष फूल पर धारणा करना या मन को टिकाना।

प्रकाश धारणा। मोमबत्ती की रोशनी पर – दीपक की शिखा पर दृष्टि स्थिर करना – बाहर की आंखें बन्द। मन की आंखों से देखना।

ध्वनि धारणा किसी विशेष ध्वनि पर – जैसे ओम की ध्वनि। भ्रामरी – प्राणायाम की गूजंन की ध्वनि पर धारणा करना।

अर्न्तमुखी धारणा जब हमारी धारण दृढ़ हो जाती है। तभी ध्यान किया जा सकता है। ध्यान और धारणा में ओतप्रोत का सम्बन्ध है।

बाहर की वस्तुओं पर ध्यान करने से कुछ सफलता मिलने के बाद अन्तरिक वस्तुओं पर ध्यान श्रेष्ठ होगा।

जब हम अन्तिरक ध्यान करने लगते हैं। तब हम अन्दर के सात चक्रों में से किसी एक पर ध्यान कर सकते हैं।

(Repeat in short)

यह मैने शुरू में ही सब वर्णन किया है फिर भी साधकों को द्वारा स्मृण करवाना चाहता हूं कि भूल न जाएं।

ध्यान या योग के लिए जो भी स्थान चुना जाए, समतल (एक level) में हो, स्वच्छ – सुन्दर और वातावरण शान्त होना चाहिए।

साधना के लिए एकान्त और शुद्ध वातावरण चाहिए।

शान्त स्थान शहरों में चुनना कठिन है। प्रदूषण दिन – प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। परन्तु जो लोग वास्तविकता में साधना करना चाहते हैं – वह स्थान और समय निकाल लेते हैं।

समय – ध्यान के लिए – साधना के लिए "ब्रह्मोवल" प्रातः 4 बजे सबसे उत्तम है। सूर्य उदय से 2 घण्टे पहले। यह समय, शांत और मधुर होता है। इस समय अधिक लोग निद्रा देवी की गोद में होते हैं। इस लिए आप को शान्त स्थान मिल जाने की संभावना और सुविधा होगी। ध्यान के लिए आसन – साफ और आरामदेह होना चाहिए। प्रतिदिन आसन और स्थान एक ही होना चाहिए। आसन और स्थान प्रतिदिनि बदलना नहीं चाहिए। ऐसा करने से ध्यान में बाधा पड़ती है। **Vibrations** खराब होती हैं। जागृत करना कठिन है परन्तु विनाश चन्द मिनटों में हो जाता है। साधना करने के लिए सही आसनों में ही बैठना चाहिए अगर न हो सके तो जिस तरह आप बैठ सकें। सही आसनों में बैठने से परिणाम और ही होते हैं।

यहां मैं दो आसनों का ही वर्णन कर रहा हूं। परन्तु काफी लम्बे अभ्यास से यह अनुभव हुआ है कि पद्मासन ध्यान के लिए सब से उत्तम है। इस के कई कारण है। पहला कारण पद्मासन का आसानो का आधार काफी हुआ है और स्थिर भी है। ध्यान की गहराई में जाने पर भी साधक की स्थिरता बनी रहती है। हिलने डुलने या गिरने की संभावना कम रहती है।

इस आसन में मेरूदण्ड (कमर) गर्दन और सिर को एक रेखा में रखने के लिए आसानी होती है।

ध्यान के लिए शरीर का सीधा रखना बहुत आवश्यक है। पद्मासन में बैठने से हमारे पैरों या हाथों से जो उर्जा निकलती है वह शरीर में ही संचित होती रहती है। सब से महत्व की बात है कि कुछ समय बैठने पर पैरों में रक्त जाना कम हो जाता है। मस्तिष्क ध्यान के लिए उपलब्ध होता है। जो लोग पद्मासन में ज्यादा देर न बैठ सके वह सिद्धासन में बैठें।

ध्यान का मुख्य लक्ष्य क्या है – कुछ **Techniques** पहले से वर्णन किया परन्तु मैं साधकों की सुविधा के लिए कुछ और गहराई में वर्णन करना चाहता हूं।

चित्त वृत्तियों को शान्त करना। जैसे श्री कृष्ण जी ने कहा है (योगः चित्त वृति निरोधः) चित की वृत्तियों का निरोध। मन और श्वास में बहुत गहरा सम्बन्ध है। अगर हम क्रोध में हो तो श्वास बहुत तेजी से चलने लगता है। मन को हम सीधे नहीं पकड़ सकते। श्वास, क्रिया द्वारा ही नियंत्रित करते हैं। प्राणायाम द्वारा हम अपनी श्वासों को नियंत्रित – नियमित, अनुपातिक (**Rhythmic**) तथा रोक कर के स्थिर कर सकते हैं।

<u>ज्ञान मुद्रा</u> प्राणायाम के उपरान्त ज्ञान मुद्रा **Pose** में पदमासन में बैठें – रीढ़ की हड्डी सीधा कर लें। आंखें हल्की सी बन्द कर लें ध्यान की **Technique** से जो भी अच्छा लगे 10.15 मिन्ट प्रतिदिन अभ्यास करते जाएं।

<u>आज्ञाचक्र पर ध्यान</u> अपने आज्ञाचक्र पर दोनों भोहों के बीच में ओम के चित्र पर गुरू मूर्ति या किसी प्रतीक पर ध्यान

करें। अटल विश्वास एवं श्रद्धा के साथ अन्दर की आंखों से देखें। मन ही मन में उस देवता – ईष्ट के अनुसार भी मन्त्र चुने जा सकते हैं। जैसे भगवान् शंकर जी का मन्त्र – ओम नमः शिवाय। ॐ! श्री गणेशाय नमः। ॐ! श्री हनुमन्ते नमः।

मन्त्र जपते हुए श्वासों की गति धीमी करें इस का अभ्यास 10–15 दिन रोज करें। महीने के प्रयास के बाद चंचलता धीरे–धीरे शान्त होने लगेगी। विचारों का तूफान थमने लगेगा। सुख–शान्ति का मधुर अनुभव होना शुरू होगा।

श्वास पर ध्यान सभी मनुष्य श्वास निरन्तर लेते रहते हैं। सांस गयी तो काम खत्म – राम नाम हो गया। हम इसके लिए कुछ खास नहीं करते। उस के प्रति जागरूक नहीं होते। ध्यान जागरूता की टैकनीक है, वीर्हगामि चेतना को अर्न्तमुखी करने की कला है। जैसा मैने पहले भी बताया है ध्यान का उद्देश्य मन को निर्विचार शान्त करना है। अगर हम अपनी चेतना को विचारों से हटा कर अपने सांस पर ले जाएँ। विचार धीरे – धीरे शान्त हो जाते हैं। आप अनुभव कर सकते हैं। प्रत्याहार करते हुए अपने आते जाते श्वास को मन की आंखों से देखने का प्रयत्न करें। यह सोचें के श्वास किसी ओर के हैं – ऐसा करने से विचार थमने लगते हैं। शांत होने लगते हैं। ध्यान सधने लगता है। साक्षी भाव का उदय होना शुरू होता है। पैदा होने से मृत्यु तक हम अपने मन की ही मानते हैं। क्योंकि हम उन्हें ही देखते हैं। आत्मा के बारे में हम खाली पढ़ते या सुनते हैं। उस का खुद अनुभव नहीं कर पाते न यत्न करते हैं। परन्तु इन की क्रियाँए होती होती नजर आती हैं।

अतः इन दोनों शरीर और मन के साथ हमारा तादात्म हो जाता है – पहचान **Identification** हो जाती है।

धारणा और ध्यान की क्रिया में यह पहचान बहुत बाधा पहुंचाती है।

नियमत अभ्यास के द्वारा हम मन और शरीर के ऊपर जा कर आत्मतत्व के दर्शन कर सकते हैं। साक्षी भाव का प्रयोग हम केवल शरीर और मन तक ही नहीं, संसार की घटनाओं के साथ भी कर सकते हैं।

"भागवद् गीता" में भगवान श्री कृष्ण जी ने इस बात पर काफी बल दे कर कहा है कि अपने आप को कर्त्ता न मान कर भगवान का एजेंट मानना चाहिए। कर्त्ता भाव में अहकार छुपा हआ है। हम करने वाले हैं। कर्त्ता भाव के समाप्त होने से और साक्षी भाव के बढ़ने से हमारे में निष्कागता – निर्लिप्तता आती है। ध्यान की गहराइयों में उतरना आसान हो जाता है। कर्त्ता भाव मन – अहम् का भोजन है। जैसे जैसे यह भाव कम होता जाएगा। धीरे धीरे मन के एहंम् का नाश होता जाएगा। शान्ति और निश्चलता बढ़ती जाएगी। संसार में दुख और सुख का मन पर प्रभाव कम होगा।

"मैं करता हूं" यह गल्त भाग है। **Math** की पहली **Line** गल्त हो तो दूसरी से तालमेल नहीं हो सकता। ध्यान में आगे बढ़ने के लिए साधक को यह भूल सुधारनी है। अगर हम विचारों को साक्षी के रूप में **witness** बन कर देखें, उदाहरण के तौर पर – आप खिड़की के पास बैठकर आते जाते लोगों को देखते हैं – और आप को जो विचार आ रहे हैं, वह लिखते जाएं – फिर देखें वह विचार आप को कितने

उल्टे–उंल्टे लगते हैं। ऐसा अभ्यास करने से विचार धीरे धीरे थमने लगें गे। फिर आप के ध्यान के अन्दर प्रविष्ट हो जायेंगे।

विचारों के इस प्रकार से आने जाने और देखने को विचार सर्जन टेकनीक कहते हैं। ऐसे ही ध्यान धारणा की मिलती जुलती दो विधिया हैं!

विचार सर्जन/ विचार विर्सजन

विचार दर्शन इसमें अपने विचारों को आते जाते तटस्थ होकर देखते हैं।

विचार सर्जन इस में विचार स्वय लाते हैं और साक्षी हो कर **As witness** होकर 8–10 मिन्ट अपनी आंखों यनि मन की आंखों से देखते हैं। फिर दूसरा बिचार लाते हैं। इस युक्ति से मन पर नियिंत्रन बढ़ता है। इसी के निरन्तर "अभ्यास" से मनुष्य विचारों को शून्य करने में सक्षम हो जाता है। मन को निरविचार किया जा सकता है।

विचार विर्सजन, इस विधि में हम विचार स्वयं लाते नहीं है – उन्हें आने देते हैं और तब हटाते हैं। इस क्रिया में हटाने पर जोर देते हैं। विधि ज्ञान मुद्रा में बैठ जाइए जो विचार आते हैं आने दीजिए। 2 – 4 मिनट के उपरान्त विदा कीजिए। यह अलग अलग विचार अलग अलग स्वरूप, हमारे ही बीते हुए जन्मों के हैं। इसलिए इनको देख कर विदा करने के सिवाय और कोई रास्ता नहीं है। ऐसा करने से धीरे धीरे विचारों की शक्ति बढ़ती जाती है। विचारों पर नियंत्रन बढ़ जाता है। मुझे जो अनुभव हुए उससे मैं समझता हूं कि मन और विचार कोई अलग चीज नहीं है। हमारे शरीर में एक अंग

है (**Brain**) मस्तिष्क – इससे लगातार उठने वाले विचारों का नाम ही मन है। जब विचार उठना रूक जायेंगे – तब मन भी एक तरह से समाप्त हो जाता है। इस के हटते ही हम निर्विचार की अवस्था में आ जाते हैं। और इस शुद्ध चेतना के दर्शन करते हैं। इन विधियों के अतिरिक्त और भी अनेक युक्तियां हैं। जैसे कुणडलिनी ध्यान – कीर्तन ध्यान – प्रार्थना ध्यान – सूफी ध्यान आदि।

मुख्य बात है ध्येय में मन का रमना। उस से एकाकार होना। "महार्षि" महेश योगी जी ने **Transcendtal Meditation** या **T.M** की टेकनीक निकाली है। जो वाहर के देशों में काफी लोकप्रिय हो रही है। आचार्य रजनीश जी ने भी पाश्चातय मनोविज्ञान की खोजों के आधार पर नई टेकनीक के प्रयोग किए हैं। पीछे के अध्यायों में योग के सिद्धान्तिक और व्यवहारिक पक्षों पर अपने विचारों के द्वारा प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है। अब कुछ वैज्ञानिक परीक्षणो **scientific experiment** पर उनके परिणामों यानि **Results** पर वर्णन करने का यत्न किया जा रहा है। क्योंकि योग एक **complete science** है।

ध्यान और मनोविज्ञान के गहरे संबंध हैं

इन का हमने पहले भी वर्णन किया – कुछ और गहराई में जाना चाहता हूं ताकि साधक लोग अच्छी तरह समझ सके। ध्यान से शरीर में – मानसिक और आत्मिक जो लाभ है – कुछ शरीरिक **Physical Changes** इन का पूर्ण व्याख्यान देना तो बहुत कठिन है जैसे मैने पहले योग के विषय में लिखने के लिए प्रार्थना की है कि यह कठिन है – यह समुद्र

है। इस को बन्द करना असम्भव है। यह विषय असीम है। फिर भी प्रयत्न करना हमार कर्तव्य है। जब से "महेश योगी" जी का टी – एम या **Transcendtal Meditation** ध्यान पश्चिम के देशों में लोकप्रिय हुआ है। तब से वैज्ञानिक परीक्षण भी हुए हैं। इन **Experiments** से **Prove** हुआ है, प्रमाणित हुआ है कि ध्यान के समय – इस अवस्था में हमारे शरीर, मन में कई क्रान्तिकारी **changes** होती हैं।

शरीर और मन में तनाव कम होना – हृदय गति का कम होना और आक्सीजन की खप्त कम होना। मस्तष्कि में अल्फा तरंगों का कम होना – हमारा लक्ष्य ध्यान है।

अभी तक के **Experiments** से चार तरंगें पाई गई है।

अल्फा – बीटा – थीटा और डेल्टा।

Alfa, Beeta, Theeta & Delta

हम कहते हैं – उस का मूंड नहीं था। मेरा मूड नहीं है। वह इन तरंगों द्वारा ही नियन्त्रत में है। जब मस्तषिक में शान्ति निष्क्रिया और तनाव रहित वातावरण होता है, तब अल्फा तरंगें उठती है तो ऐसा होता है यह प्रति सैकेन्ड 8 – 13 अवृति करती है, साधारण व्यक्ति में भी तरंगे उठती है। यह शान्ति एवं अनुभव करवाती है। परन्तु ध्यानावस्थित योगियों पर **Experiment** करने पर पता चला है की उन के मस्तषिक की स्थिति "अल्फा" तरंग वाली होती है।

वीटा तरंग एक सैकेन्ड में 14 बार उठती हैं। जब आदमी किसी काम में जान से लगा होता है तब यह तरंग जागृत होती है। कोई हिसाब निपटाना – कोई जोड़ तोड़ करना –

बिगड़े हुए काम को सुलझाना। तब दिमाग की स्थिति सक्रिय होती है।

थीटा तरंग यह प्रति सैकेन्ड 4–6 आवृति करती है। नींद से पूर्व या अनिद्रित अवस्था में।

डेल्टा तरंग यह 6 आवृति करती है। कभी नींद की अवस्था में। नींद के बिना जागृत अवस्था में। शायद कभी कभी उठती हो। जागृत अवस्था में अक्सर "अल्फा' और "थीटा" तरंगे उठती है। सब से अजीब बात यह है कि किसी एक क्षण में **Brain** के एक हिस्से में अल्फा तरंग उठती रहती है और एक में बीटा। जो साधक लोग अन्तर्मुखी लोग है – उनमें अक्सर "अल्फा" तरंगे उठती रहती हैं और ज्यादा पैदा होती हैं। कुछ योगियों में पहले "अल्फा" तरंगे उठती है। बाद में बीटा में बदल जाती है। जिन लोगों को ज्यादा तनाव नहीं – तनाव रहित हैं, उन में ज्यादा "थीटा" तरंगे पाई जाती है। जो निद्रा से पूर्व ज्यादा आलस्य (सुस्ती) की स्थिति में होते हैं।

"योगा" या "त्राटक" करने वाले साधकों को जान कर खुशी होगी। योग और " त्राटक" करने से तरंगे पैदा की जा सकती हैं। अन्तिरक कुम्भक करने से भी ऐसा होता है।

शरीर के अन्दर गतियां जैसे हृदय गति (**Heart Palpitation**) रक्तचाप (**Blood Pressure**) रूधिर परिसंचार (**Blood circulation**) पाचन क्रिया श्वसन क्रिया आदि अनेच्छिक क्रियाएं मानी जाती हैं। जिन में हम अपनी इच्छा अनुसार परिवर्तन नहीं ला सकते। जैसे हम हाथ पैर आदि हिला डुला सकते हैं। अभी तक वैज्ञानिक इन अन्दर की क्रियाओं पर मस्तिष्क द्वारा नियन्त्रण को असम्भव मानते थे।

जब कोई योगी या फकीर इनमें इच्छानुसार – परिवर्तन कर के देते थे तो आश्चर्य भरी नजरों से देखा जाता था।

आजकल वैज्ञानिकों ने एक (**Biofeed Back Technique**) युक्ति बिजली यन्त्र द्वारा निकाली है। जिससे उन्हें काफी सफलता मिली है। अन्तिरक अंगों क्रियाओं पर सफलता प्राप्त करने में अमरीका में सैकड़ों व्यक्तियों ने अपनी इच्छानुसार इस टैकनीक द्वारा अपने रक्तचाप – हृदयगति में और अपने **Brain** में उठने वाली तरंगों में इच्छानुसार परिवर्तन लाने में सफलता प्राप्त की है। कुछ विशेषज्ञयों (**Scientist**) ने वायोफीड बैक को विद्युत उपकरण (**Electricgadet**) या पुशवटन कहा है।

अब जो महापुरूषों द्वारा इच्छाओं से परिवर्तन किए जाते थे, उन्हें वैज्ञानिक (सांइसदान) मानने पर मजबूर हो गए हैं।
ध्यान के प्रभाव और लाभ। ध्यान का सही लक्ष्य आत्मानुभूति। इस उपलब्धि की प्राप्ति के हेतु शान्ति – आनन्द का स्रोत प्राप्त हो जाता है। इस के बाद पाने के लिए कुछ नहीं रहता।

इसलिए कुछ नहीं रहता क्योंकि यह बुद्दतत्व की स्थिति है। इस के प्राप्त न होने पर भी जो साधक नियमित अभ्यास करते हैं – उन्हें अनन्त लाभ होते हैं। मन का स्थिर हो जाना – शान्त हो जाना। सुख की प्रसन्नता नहीं दुख में घबराहट नहीं। वह किसी स्थिति में भी विचलित नहीं होते। वह सुख की सत्यता को समझ जाते हैं। यह दोनों नही रहेंगे। यह दोनों मेहमान हैं। चले जाएं गे शाश्वत ही रहेगा। सुख दुख शाश्वत नहीं है। शाश्वत में प्रीति करो। न काहे से दोस्ती न काहे से वैर। वह

सम अवस्था में रहते हैं। उन का तीसरा नेत्र "ज्ञान चक्षु" खुल जाता है। व्यवहार में मधुरता आ जाती है। ध्यान की साधारण अवस्था में प्रवेश करने से भी बहुत से शरीरिक और मानसिक लाभ होते है।

ध्यान और साइंस – मस्तिष्क में "अल्फा" तरंगें पैदा होती हैं, शान्ति और आनन्द का अनुभव होता है। ध्यान के नित्य अभ्यास से शरीर में रासायनिक रचना (Chemistry) में परिवर्तन आ जाता है। सुप्त ग्रन्थियां जागृत हो जाती है। आज के तनाव के युग में ध्यान क्रिया बहुत सहायक है।

जैसे उच्चरक्तचाप – हृदय रोग (Heart attack) – मानसिक तनाव (Tensions), अनिद्रा (Sleeplessness), – स्नायु रोग (Nervous system) आदि ऐसी परेशानियों के लिए ध्यान क्रिया बहुत उपयोगी है। अमेरीका के डाक्टर एवं विज्ञानिक कार्ल साइमान्टन के मतानुसार कैंसर जैसे घातक रोग – मानसिक संघर्ष के कारण निराशा जनक दृष्टिकोण के कारण, होते हैं। उन्हीं के अनुसार योग की क्रिया "शिथलीकरण" आत्मनिरीक्षण प्रसन्न चित्त रह कर जीवन के प्रति रचनात्मक दृष्टिकोण अपना कर छुटकारा पाया जा सकता है।

<u>जागृति अवस्था</u> हमारे जीवन का मुख्य मार्ग इसी अवस्था में गुजरता है। हमारा शरीर, इन्द्रिय, मन, अहम इसी अवस्था में सक्रिय होते हैं। इस लिए हम जो भी कार्य "मनसा" – "वाचा" और कर्मणा करते हैं – मन से, वाणी से, कर से हमें याद रहते हैं। किसी समय हम स्मृति में होते हैं – जैसे मृतक की याद में – भविष्य के विचार में खोए हुए। तब हम

कई घटनाओं जो ज्ञान इन्द्रियों के सम्मुख होती हैं – ध्यान नहीं रहता। तब हम जगे हुए भी मुर्छित होते हैं। ध्यान या अध्यात्म की नजर से यह मुर्छित अवस्था, अध्यात्मिक प्रगति में बहुत बड़ी बाधा है।

स्वपन अवस्था "जागृति" अवस्था और स्वपन अवस्था में गहरा संबंध है। परन्तु "जागृति" अवस्था भी एक स्वपन अवस्था है। स्वपन अवस्था में स्वपन सच्चा मालूम होता है। जब तक हम जाग नहीं जाते इसी तरह यह जगत यथार्थ लगता है और परमात्मा मिथ्या। कब तक ऐसा लगता है जब तक हम अध्यात्मिक दृष्टि से जाग नहीं जाते। जब हम अध्यात्मिक दृष्टि से जाग जाते हैं तब यह दुनिया मिथ्या और परमात्मा सच्च लगता है। यह अध्यात्मिक "जागृति" पूरी तरह से चौथी अवस्था तुरीयवस्थसा में ही आती है। हमारा"साक्षात्कार" उस समय यथार्थ यानि (**True reality**) से होता है। जब वैज्ञानिक विश्लेषण करेंगे। "जागृत अवस्था" में हमारे दो शरीर – स्थूल (**Physical**) एवं सूक्ष्म दोनों काम करते हैं। "स्वप्न" में स्थूल शरीर (**Physical**) निष्क्रिय जो जाता है। उस के साथ जुड़ी हुई ज्ञानेन्द्रियां "आंख" "कान" "नाक" – जिहवा, त्वचा और कर्मन्द्रियां भी "हाथ" "पैर" "मुंह" जनेन्द्रियां और मल का निष्कासिन करने वाली इन्द्रियां – हमारे सूक्षम शरीर का भी एक हिस्सा चेतन मन निष्क्रिय हो जाता है।

"अवचेतन" (**Subconcious**) और अचेतन (**Unconcious**) का खेल है। स्वपन मन की इन दो स्तरों यानि **stages** में अभिव्यक्ति है वासनाओं अपूर्ण तमन्नाओं की। स्वपन अवस्था में हमारा चेतन मन में वृद्धि भी सम्मिलित है,

निष्क्रिया होती है। ''अवचेतन'' और ''चेतन'' स्तरों पर होने वाली घटनाओं पर नियंत्रण नहीं हो सकता।

सपने में वे ढंगी – असंगत घटनाएं घटती हैं।

जिस व्यक्ति की ''जागृता वस्था'' और ''स्वपनावस्था'' मे जितना तालमेल होग वह आदमी उतना ही अधिक प्रमाणिक, इमानदार और सही अर्थ में अध्यात्मिक होगा।

स्वपन को साधक की सफलता की अच्छी कसौटी माना जा सकता है। जिस की सारी इच्छाएं समाप्त हो जाती हैं, उसी की ''स्वपन अवस्था'' समाप्त हो जाती है – और ''तुरीयावस्था'' में आ जाता है – जीवन मुक्त हो जाता है।

सुषुप्ति स्वपन रहित गाढ़ी निद्रा – पूर्ण अभाव की स्थिति है। इस स्थिति से हमारा अवचेतन तथा अचेतन मन भी निष्क्रिय हो जाता है। हमार सम्पूर्ण मन शान्त हो जाता है। अब बचा क्या रहता है। हमारी अविद्या – अहंम और आत्मा। इस अवस्था में हम आत्मा के केन्द्र के पास पहुंच जाते हैं इसलिए हम एक तरह की सुख शान्ति का अनुभव होता है। कुछ कुछ ऐसा होता है जैसे ध्यान की गहरी अवस्था में होता है।

तुरीयावस्था, तुरीय और सुषुप्ति में कई बुनियादी भेद हैं। सुषुप्ति में हम चेतना के केन्द्र विन्दु के पास अचेतन अवस्था में पहुंच जाते हैं।

जबकि तुरीया में हम इस बिन्दु पर पूर्ण चैतन्य और सजगता की अवस्था में पहुंच जाते हैं। सुषुप्ति अवस्था में चेतन के केन्द्र पर पहुंचना ऐसे ही है – जैसे किसी सोये हुए आदमी की पीठ पर या किसी ओर तरीके से ऊंचे पर्वतों पर पहुंचना। ध्यान या ''तुरीया'' में केन्द पर पहुंचना। ''जागृत

अवस्था'' में अपेन बलबूते पर ''गोरी शंकर'' की चोटी पर पहुंचना। परन्तु दोनों के आनन्द के भेद होता है

''सुषुप्ति'' में ''अविद्या'' ''अहम'' (EGO) बने रहते हैं।

''तुरीयावस्था'' में दोनों विलीन हो जाते हैं। ''सुषुप्ति'' में अवद्यिा के कारण किसी चीज का ज्ञान नहीं रहता न सत्य का – न बुरे का – न भले का। इस अवस्था में अज्ञानता पूरी छाई रहती है।

''तुरीयावस्था'' में अवद्यिा का गायब हो जाने से चेतना अपने शुद्ध रूप में होती है।

''जागृतवस्था'' में हम स्थूल शरीर (''अन्नमयकोष'' और ''प्राणमयकोष) तथा सूक्ष्म शरीर (मनोमयाकोष और विज्ञानमयकोष) की **stage** में अनुभव प्राप्त करते हैं।

''स्वपनवस्था'' में हमारा स्थूल शरीर निष्क्रिय हो जाता है। फिर सूक्ष्म शरीर के स्तर पर अनुभव करते है।

''सुषुप्ति'' में दोनों निष्क्रिय हो जाते हैं। तब हम कारण शरीर में चले जाते हैं। तुरीयवस्था में हमारे तीनों शरीर और पांचों कोषों का अभाव हो जाता है। अनुभव की दृष्टि से हम शुद्ध चेतन के स्तर पर होते हैं। सुषुप्ति में हमें जो सुख शान्ति का अनुभव होता है – वह इस लिए नहीं होता कि हम आत्मा के दर्शन कर पाते हैं। आत्मा तो अब भी अविद्या से ढकी रहती है। इस सुख शान्ति का अनुभव कैसे होता है। वह ऐसे कि हमारा द्वन्दात्मक मन निष्क्रिय और शान्त होता है इस का सम्पर्क द्वन्दात्मक दुनिया से टूट जाता है। तुरीयवस्था मे केवल मन ही निष्क्रिय नहीं होता परन्तु अविद्या का नाश हो जाता है और हम शुद्ध चेतन का दर्शन कर पाते हैं।

चक्र ध्यान साधना

पीछे ध्यान से संबंधित कई विषयों पर प्रकाश डाला गया है। अब हम ध्यान साधना की कुछ विशेष विधियों का वर्णन करते हैं। इनके अभ्यास द्वारा ध्यान की गहराई में उतरा जा सके। ध्यान के संबंध में चाहे कितनी भी जानकारी प्राप्त कर लें – उस से ध्यान के लक्ष्य – आत्मानुभूति – की प्राप्ति नहीं हो सकती। जैसे आप तैरने के विषय में जितनी भी जानकारी प्राप्त कर ले परन्तु अभ्यास के बिना तैर नहीं सकते। इसी तरह ध्यान प्रक्रिया में भी अभ्यास के बिना सफलता प्राप्त नहीं हो सकती। इस लक्ष्य को ध्यान में रचाते हुए – हम नीचे कुछ सर्वमान्य विधियों का उल्लेख कर रहे हैं। आशा है कि साधकों को इन में से जो उन को अच्छा लगे उन का प्रतिदिन इमानदारी से अभ्यास कर ध्यान की गहराई में उतर सकेंगे और एक दिन आत्मासाक्षात्कार करने में भी सफल होंगे

हम मुख्य विधियों (टेकनीकों) का वर्णन करेंगे।

(1) चक्र ध्यान साधना (2) त्राटक ध्यान साधना

साधक के लिए पदमासन और सिद्धासन में बैठना विशेष लाभकारी है। हमारे शरीर की उर्जा शरीर के छोरों (हाथ और पैर की ऊंगलियों) से बाहर निकलती रहती है। इन दो आसनों – पदमासन और सिद्धासन में छोरों की स्थिति ऐसी होती है कि उर्जा शरीर में ही रह जाती है। ध्यान की गहराई में उतरने में सहायता मिलती है। साधक इन आसनों में न बैठ सके तो सुखासन में भी बैठ सकते हैं।

श्री पतंजलि जी ने कहा है "आसनम स्थिरम"!

जिस आसन में आराम से बैठ सकते हैं – बैठने पर रीढ़

की हड्डी यानि मेरूदण्ड सीधा रखें। मेरूदण्ड का सीधा रहना आवश्यक है।

चक्र ध्यान साधना

हमारे शरीर को भागों में बांटा गया है। यानि (7) चक्रों में हमारे शरीर में कई स्थानों पर बहुत ही सूक्ष्म नाड़ियों के गुच्छे हैं वहां ग्रन्थियां (Glands) भी है। योग में इन्ही को "कमल" या चक्र कहते हैं। महत्वपूर्ण सात चक्र हैं। इनमें पांच रीढ़ की हड्डी पर हैं। एक भूमध्य में और एक ब्रह्मरूध्र में। हर चक्र का स्वरूप अलग है। रंग – मंत्र – आकार – देव – वाहन – गुण – स्वाद – तत्व इत्यादि सब अलग–अलग हैं। यह सब स्थूल शरीर में नहीं – यह सूक्ष्म शरीर में है।

यह शरीर की चीर–फाड़ (surgery) कर के दिखने वाले नहीं। यह सूक्ष्म हैं। इन्हें सूक्ष्म आंखों से ही देखा जा सकता है। इन चक्रों या शक्ति केन्दों को कमल के रूप में दिखाना चित्त की भाषा में व्यक्त करना मात्र है।

चक्र – ध्यान साधना शुरू करने से पहले 5–7 मिन्ट की आंखों से सारे शरीर को देखना चाहिए और उसे तनाव से मुक्त कर लेना चाहिए। शरीर और मन दोनों को अन्दर और बाहर दोनों ओर से बिल्कुल स्थिर शान्त कर लेना चाहिए।

थोड़ी देर इस अवस्था में शांति और स्थिरता का अनुभव एहसास करें। लम्बी गहरी सांस लें। महसूस करें कि सांस मूलाधार से सहस्त्रार तक जा रही है। सांस छोड़ते वक्त महसूस करें कि सांस सहस्त्रार से मूलाधार तक – सूक्ष्म सुषुम्ना नाड़ी के मार्ग से जा रही है। ऐसा चार पांच मिन्ट अभ्यास करने के बाद चक्र पर साधना शुरू करें।

मूलाधार चक्र यह चक्र (शक्ति केन्द्र) रीढ़ की हड्डी के निचले किनारे के पास है – मलदार और जननेन्द्रिय के बीच स्थित है। यह चक्र – चक्रों की श्रृंखला में सब से नीचे का चक्र है। इस में "पृथ्वी तत्व" प्रधान है। पृथ्वी के गुण क्या हैं। पृथ्वी के गुण हैं "स्थिरता" "निश्चलता" – "गुरुता" – सहनशीलता दृढता यह सब विद्यामान है। महायोगियों – तंत्रकों ने इस चक्र को साधना रूप जान एक कमल के रूप में चित्रत किया है। इसकी चार लाल रंग की पंखुड़ियां – एक सफेद गोल चक्र को घेरे हुए हैं। दर्मियान में सफेद गोल चक्र – चारों तरफ चार लाल रंग की पत्तियां है।

चक्र के अन्दर चार कोणों वाला एक यन्त्र है। जिस से प्रकाश की किरणें निकलती रहती हैं। यन्त्र के बीच एक उल्टा लाल रंग का त्रिकोण है। योगियों का दावा है कि उन्होंने ध्यान की गहराई में इसी तरह देखा है। ध्यान करते समय हमें इसी चित्र पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। इस के प्रकाश हैं – जो किरणें निकलती हैं वह हमारे शरीर में व्याप्त हो रही हैं। हम में स्थिरता – निश्चलता – सहनशीलता आदि गुणों का उदय करती हैं। इस पर नियन्त्रण हो जाने पर साधक पूर्व जन्म की बातें जानने में सक्ष्म हो जाता है। कुण्डलिनी योग साधना करने वाले जब इस कुण्डलाकार शक्ति को जानने में सक्ष्म हो जाते हैं। उस का मुंह ऊपर की ओर हो जाता है। उससे निकलने वाली शक्ति "मूलाधार" चक्र का भेदन करती हुई आगे की ओर बढ़ती है। इसके भेदन से साधक में ऊपर वर्णन किए गए गुण जागृत हो जाते हैं। आपान वायु का मुख्य स्थान है। जब योगी साधू चक्र की साधना में दृढ होता जाता है तो उसका चित्त आनन्दमय हो जाता है। आरोग्यता आने

चक्रों की आकृति एवं उनकी स्थिति
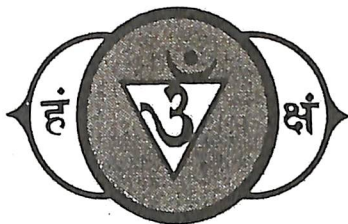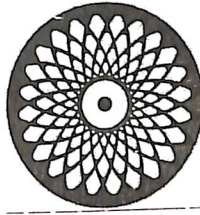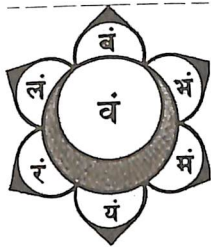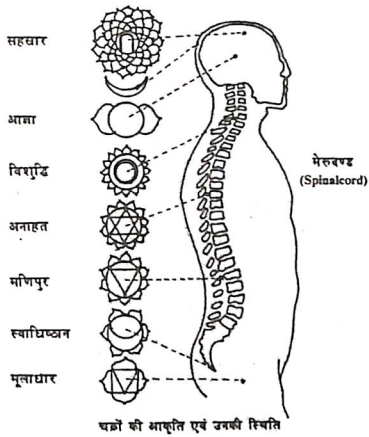
लगती है। यह चक्र पूर्व जन्मों के संसकारों का केन्द्र है। इसके नियन्त्रण में होने से साधक पूर्व जन्म की बातें जानने लगता है। कुण्डलिनी योग के अनुसार इस चक्र के पास कुण्डलिनी नीचे की ओर मूंह किए हुए साढे तीन फेश डाले हुए सांप की सुप्तावस्था में स्थित है। जब कुण्डलिनी योग साधना करने वाले इसे जगाने में सक्ष्म हो जाते हैं तो इसका मुंह ऊपर हो जाता है। उससे निकलने वाली शक्ति मूलाधार का भेदन करती हुई आगे बढ़ती है।

स्थान – गुदा व योनि – तत्व पृथ्वी प्राप्ति विद्या आरोग्य।

स्वाध्ष्ठिान चक्र यह चक्र मूलाधार (जननेन्द्रिय के पीछे) रीढ़ पर स्थित है। इस शक्ति केन्द्र में जल तत्व प्रधान है। अचेतन का प्रतिनिधित्व करता है। इसमें जल तत्व के गुण जैसे "तरलता" "कोमलता" "सिन्धता" "आकार – ग्रहण क्षमता"। जिस वस्तु में जल रखा जाए उसी का आकार धारण कर लेने की क्षमता उसी में विद्यामान है। जब साधक इस चक्र को साध लेता है तो उसमें यह विद्यामान हो जाते है।

ध्यान साधना के लिए यह चक्र कमल के रूप में चित्रति किया गया है। इसमें एक प्रकाशमान श्वेत गोलाकार है।

इसकी छः सिन्दूरी रंग की पंखुडिया हैं। पंखुड़ियां श्वेत चक्र को घेरे हुए है। चक्र के ऊपरी हिस्से में एक अर्दचन्द्रकार आकृति है जिससे प्रकाश की किरणें फैल रही हैं। साधक को इसी चक्र पर ध्यान साधना है। इस शुक्रकोष स्थिल चक्र पर साधना में ब्रह्यचर्य, साधना में, विशेष सहायता मिलती है। कुण्डलिनी योग साधक की जागृत शक्ति इस शक्ति केन्द्र को स्पर्श करती है तो इस चक्र की छः पंखुडियां खिल उठती हैं।

ऊषा काल की भांति अपनी सिंदूरी आभा बिखेरने लगती हैं। यह केन्द्र "काम", "क्रोध", भय, "निद्रा" आदि का मूल स्रोत माना गया है। इस चक्र के सधे जाने पर – यह सब वश में आ जाते हैं। "संयम" – "साधना" – ब्रह्मचर्य पालन में इससे सहायता मिलती है।

स्थान – "पेडू" – तत्व जल देवता विष्णु – प्राप्ति काव्य योग

मणिपुर चक्र यह चक्र शरीर के केन्द्र – नाभि के पास मेरूदण्ड मे स्थित है। यहां पर हजारों नस नाडियां मिलती हैं। नस नाड़ियां यहां से शरीर में ऊपर नीचे दायें वायें फैलती हैं। इस चक्र में अग्नि तत्व प्रधान है। इसे "अग्नि चक्र" "सूर्य चक्र" या नाभि चक्र भी कहते हैं। इस में अग्नि सुलभ गुण विद्यामान है। जैसे ऊपर की ओर जाना – शुदिकरता आदि। इस चक्र पर ध्यान साधने से यह गुण साधकों में खुद विकसित होने लगते हैं। ध्यान साधना के लिए इस चक्र का चित्र एक कमल जैसा दर्शाया है। इस की नीली पंखुडियां हैं। एक श्वेत गोलाकार चक्कर को घेरे हुए हैं। चक्र के बीच ब्रह्मडीय अग्नि घेतक – अग्नि के रंग का त्रिभुजाकार जिस से प्रकाश प्रफुरित हो रहा है।

इस का गहरा संबंध हमारे पाचन संस्थान से है।

पाचन इस को सक्रिय कर के हम अपनी जठ राग्नि को उतेजित करते हैं।

मणिपुर तक स्थूल तत्वों, पृथ्वी जल और अग्नि की प्रधानता रहती है। जो साधक को नीचे की ओर, संसार की ओर खींचते रहते हैं, साधक की यहां तक की यात्रा कठिन है।

जब साधक ''मणिपुर'' की यात्रा कर लेता है तो आगे की यात्रा आसान हो जाती है।

इस का स्थान नाभि – तत्व अग्नि देवता वृदरूद्र – प्राप्ति विद्यासार्मथ्य

अनाहत चक्र वा ध्यान साधना इस का स्थान हृदय तत्व वायु देवता – इशान रूद्र – ईशत्व – विवेक प्राप्ति। यह चक्र मेरूदण्ड यानि रीढ़ की हड्डी ऐसे भाग में स्थित हैं यहां हृदय इस के बहुत समीप है। इस लिए इसे हृत चक्र भी कहते हैं। जीवात्मा का निवास स्थान हृदय में ही माना जाता है। योगी ध्यान साधना के लिए सब से उत्तम मानते हैं। यह नीले रंग का 12 दल वाला कमल है। इस चक्र में वायु प्रधान है। साधक की जागृत कुण्डलिनी जिस समय अनाहत चक्र का भेदन कर लेती है। तब इस की बारहां पंखुड़िया प्रफुटित हो उठती हैं। साधक में आश्चर्य जनक शक्तियां विकसित होने लगती हैं।

''अनाहत'' का अर्थ क्या है। इस का अर्थ बिना चोट के। ऐसी ध्वनि जो बिना चोट के निकले। चेतना के इस स्तर (stage) तक आते–आते साधक साधना में बहुत ऊंच्चाई तक पहुंच जाता है। वह शान्ति – प्रेम – मित्रता का स्रोत बनने लगता है।

विशुद्धि चक्र पर ध्यान साधना यह चक्र मेरूदण्ड में सुषुम्ना के उस हिस्से में केन्द्रित है जो ''कठ कूप'' के सामने पड़ता है। इस में आकाश तत्व प्रधान होता है। यह ''16 दल वाला कमल है।''। आकाश तत्व प्रधान होने के कारण इस में आकाश तत्व वाले गुण हैं। जैसे ''निर्मलता'' –

"असीमता" – "अनन्तता" "व्याप्कता" और शून्यता। इस चक्र पर ध्यान करने से वह गुण साधक में भी विकसित होने लगते हैं। ध्यान साधना के लिए योगियों ने कमल के रूप में बताया है। "रंग – धूम्र" में "16 पंखुड़ियां" एक श्वेत चक्र के इर्द गिर्द फैली हुई हैं। चक्र में एक गोलाकार यन्त्र है जिस से प्रकाश की किरणें निकलती हैं। और फैल जाती हैं। जब साधक इस चक्र को भेदता है तो उसमें व्यक्तितत्व प्रफुलिलत हो उठता है। "तत्व" – "आकाश" – प्रधान गुण – "निर्मलता" "असीमता" -- "अनन्तता" – "व्याप्कता" और "शून्यता" – "पंखुड़ियां"

<u>आज्ञा चक्र</u> यह चक्र सुषुम्ना के उस हिस्से में स्थित है जो दोनों मोहों के बीच पड़ता है। यहां "इड़ा" "पिंगला" – "सुषुम्ना" तीनों नाड़ियां मिलती हैं, इसे "त्रिवैणी" या "त्रिकुटी" भी कहते हैं।

यहां पर ध्यान सिद्धि से "दिव्य चक्षु" जिसे "ज्ञान चक्षु" या तीसरा नेत्र भी कहते हैं, खुल जाता है। विवेक शक्ति का उदय होता है। ध्यान के लिए यह चक्र बहुत ही उपयुक्त माना जाता है। एक ऐसा कमल जिस की दो शुभ्र पंखुडियां एक चक्कर को घेरे हुए हैं। चक्र के बीच में "ॐ" आच्छादित एक अण्डाकार आकृति है। जिससे शुभ रश्मियां निकल रही है। यह चक्र "महत्व" प्रधान करता है। इस पर ध्यान सिद्ध होने से शक्तियाँ जागृत होने लगती हैं। कुण्डलिनी शक्ति जब इस चक्र का भेदन करती है तो उसकी चेतना उच्च स्तर पर पहुंच जाती है। उस समय बहुत ही असीमता मालूम होती है।

उस समय एक पतली सी परत पार करने वाली रह जाती है।

प्रधान तत्व – ''महतत्व'' देवता ''लिंग'' – वाक्य सिद्ध।

सहस्रार चक्र – देवता – ''पदब्रह्म'' प्रधान ''शून्य'' ''स्थान'' ''मस्तिष्क'' ''दल'' ''1000'' ध्यान का फल ''मुक्ति'' सहस्रार चक्रों की श्रृंखला में आखिरी और सातवां चक्र है। सुषुम्ना के अन्तिम किनारे पर मस्तिष्क के ऊपरी भाग में ब्रह्मरूध्र स्थित है। ब्रह्मरूध्र सूक्ष्म शरीर का लिवास माना जाता है। इस चक्र में शून्य (अक्षर) तत्व प्रधान माना जाता है। उसे शून्य चक्र या द्वन्द्वरहित चक्र कहा जाता है। यह हजार पंखुडियों वाला चक्र पूर्ण चन्द्राकार और अर्वण है। साधक यह अनुभव करता है कि 1000 पंखुड़ियों से अनगिनत प्रकार की किरणें उभरी हैं वह शरीर और मन को शून्य करती आ रही है। अब न शरीर है न मन – शुद्ध चेतना भाग है। सत्त – चित्त – आनन्द। योगियों का दावा है कि सहस्रार चक्र साधना में सिद्धि प्राप्त हो जाने पर योगी शोक मुक्त हो जाता है। वह परमविज्ञानी और त्रिकालदर्शी हो जाता है। इस परम शक्ति पर पहुंच कर कुण्डलिनी अपना बजूद खो देती है। शिव में लीन हो जाती है। साधना सिद्धि की अन्तिम स्थिति है। यहां ज्ञाता और (ज्ञेय) का भेद मिट जाता है। संसार के सारे द्वन्द – जन्म – मृत्यु – ज्ञान – अज्ञान – शुभ – अशुभ – बुरा भला – पुण्य – पाप समाप्त हो जाते है। बूंद समुद्र में समा जाती है। यह कहना भी ठीक नहीं कि बूंद समुद्र में समा गई शायद समुद्र ही बूंद में समा गया है। यह परमानन्द की स्थिति है। तंग गुणों का वर्चस्व चक्रों के दर्शन में बाधक है। स्थूल शरीर सात्विक भोजन तथा मन बुद्धि के सात्विक विचार के कारण शुद्ध और साफ

होगा – चक्रों के दर्शन में उतनी ही आसानी होगी। इसलिए यम तथा नियम का पालन (आत्मासाक्षात्कार) की प्राप्ति में सहायक होगा। यह मैंने पहले भी बताया है कि चक्र स्थूल शरीर में नहीं यह सूक्ष्म शरीर सुषुम्ना नाड़ी में स्थित है।

चक्रों के दर्शन से एक महत्वपूर्ण – लाभ यह होता है कि साधक का अपने शरीर और मन से मोह टूट जाता है। आत्मासाक्षात की ओर उन्नित होती है।

कुण्डलिनी के अनेक नाम हैं – जैसे (चैतन्य ज्योति) "(आत्म ज्वाला)" विद्युत शक्ति आदि।

त्राटक साधना पहले हम ने ध्यान साधना की एक महत्वपूर्ण विधि चक्र साधना वर्णन करने का प्रयास किया है। अब ध्यान की एक और महत्वपूर्ण क्रिया विधि – "त्राटक" पर प्रकाश डालने का प्रयास करेंगे। हर साधक के लिए सभी विधियां जरूरी नहीं हैं। शुरू–शुरू में बहुत विधियों का प्रयोग किया जा सकता है। अनुभव द्वारा जो विधि साधक को सुलभ हो – उसे अपनाना चाहिए।

त्राटक साधना

हमारे शुद्धिकरण की छः क्रियाएं है – जिन में त्राटक की क्रियाएं भी हैं।

आंखों की ज्योति बढ़ाने में यह क्रिया उपयोगी है। विशेष तौर पर नजदीक दृष्टि वोल रोगियों के लिए। अनिद्र **(Sleeplessness)** – चिन्ता **(Tension)** और स्नयु रोगों को **(Nervousness)** दूर करने में त्राटक बड़ा ही कारगार प्रमाणित हुआ है। कुछ साधक कहते हैं कि यह हठयोग की क्रिया है। केवल ऐसा नहीं। वह राजयोग, ध्यानयोग की क्रिया

है। चित्त को एकाग्र करने में सहायक – सोई हुई शक्तियों को जागृत करती है। हम त्राटक के दूसरे पक्ष (ध्यान पर) पर अधिक विचार करेंगे ताकि साधक लोग खुद इसका अभ्यास कर सकें।

त्राटक का अर्थः त्राटक का अर्थ किसी एक वस्तु पर टकटकी लगाकर पलक को झपकाए बिना दृष्टि से देखना। राजयोग के अनुसार यह धारणा की एक विधि है। हमारे मन में हजार विचार चलते रहते हैं। मन बंटा रहता है। उसको एकाग्र करने के लिए त्राटक एक कारगार विधि है। एकाग्रता बढ़ती है और ध्यान की गहराई में ले जाती है। त्राटक अभ्यास ''पद्मासन'' या ''सिद्धासन'' करना चाहिए।

अगर शरीर स्थिर न होगा तो हिलेगा – शरीर हिले गा तो आंखें हिलेंगी – आंखें हिलेंगी तो मन नहीं लगेगा। आंख और मन का गहरा संबंध है। आंखें देखकर मन की अवस्था जानी जा सकती है। इसलिए आंखों को मन का दर्पण कहा जा सकता है।

त्राटक के भेद : त्राटक दो प्रकार का होता है। ब्राह्मत्राटक और अन्तर त्राटक। ब्रह्य त्राटक किसी बाहरी वस्तु पर नेत्र गोलक स्थिर किया जाता है। ब्राह्य त्राटक के नीचे लिखी हुई वस्तुओं में से किसी भी वस्तु को जिसमें आप की रूचि हो – जिसमें आप की एकाग्रता बड़े– आप चुन सकते हैं।

1. मोमवत्ती या दीपक की लोह।

2. नासाग्र या नाक की नोक (Tip of Nose)

3. भ्रूमध्य या दोनों भोहों के बीच का स्थान यहां हम टीका लगाते हैं।

4. खुला आसमान बादल रहित।

5. दर्पण पर – अपनी फोटो पर – ईष्ट या गुरू मूर्ति पर।

6. गहरा अन्धकार या शून्यता पर।

त्राटक साधना के लिए जरूरी बातें

1. नेत्र गोलक (Eye ball) स्थिर होना चाहिए।

2. पलके झपके नहीं।

3. जिस वस्तु पर आप त्राटक साधना कर रहे हों – उसके सिवा कुछ और न दिखे।

4. न केवल आंखे परन्तु मन भी उसी में रम जाए – इधर उधर न भटके।

त्राटक करते समय

हमें इन बातों का ध्यान रखना चाहिए (1) समय (2) वस्तु और (3) दूरी

1) जिस वस्तु पर साधना की जा रही हो वह छोटी स्पष्ट होनी चाहिए।

2) उसकी दूरी आंखों से 8 फुट से ज्यादा न हो।

3) वस्तु का ऊपर का किनारा भ्रूमध्य के बराबर होना चाहिए।

4) अभ्यास का समय धीरे–धीरे एक मिन्ट से शुरू करें – धीरे–धीरे बढ़ाते जाँए। दृष्टि स्वाभाविक होनी चाहिए। वस्तु को देखने की क्रिया स्वाभाविक होनी चाहिए। आँखों या माथे पर किसी प्रकार का तनाव या बल नहीं पड़ना चाहिए। आँखें

पूरी खोल कर सहज भाव से लक्ष्य की ओर देखते जाना है। जब आप विचार में डूब जाते हैं – कोई बात तन मन से सुनने लगते हैं। यह स्वभावक (**Natural**) त्राटक की स्थिति है। यह स्थिति अभ्यास द्वारा प्राप्त की जाती है।

मोमबत्ती की लोहः– शुरू में मोमबत्ती की लोह या दीपक पर अभ्यास करना कई तरीकों से श्रेयस्कर है – अच्छा है। पहले काल के प्रकाश और आँख का चोली दामन का संबंध है। प्रकाश विशेष कर धीमा प्रकाश आँखों को अपनी और चुम्बक की तरह खींचता है। मोमबत्ती की लोह इसी तरह का प्रकाश है न तीव्र है न धूमल है। दूसरा कारण मोमबत्ती की धूमिल ज्योति के कारण मन की आँख पर एक अच्छी तस्वीर खींचती है।

बाधायें : इस साधना के समय कई बाधाएं – रूकावटे आती हैं। पलकें झपकाना आँखों की स्वभाविक क्रिया है। त्राटक साधना के शुरू के काल में बाधायें आना स्वाभाविक हैं। आँखें दुखने लगती हैं। आँखों में पानी भर जाता है। ऐसी अवस्था में पलकें गिरा कर थोड़ी देर के बाद साधना शुरू कर देनी चाहिए। जोर जबरदस्ती से हानि हो सकती है। इन्द्रियों को धीरे–धीरे प्यार से वश में करना चाहिए। नए साधक को देर तक एक वस्तु को देखते देखते थकान महसूस होने लगती है। इन सब कमजोरियों पर धीरे–धीरे विजय प्राप्त करनी चाहिए।

सिद्धियां एवं खतरे : इसके लगातार अभ्यास से कई सिद्धियां प्राप्त होती हैं। इस साधना की महान उपलब्धि है। दिव्य दृष्टि से साधक दूर की चीजें देखने में सक्षम हो जाता

है। कई बार भूत, भविष्य की बाते बताने लगता है। इन सिद्धियों में उलझ जाना – अपने स्वार्थ के लिए इस्तेमाल करना साधना पथ से भटक जाना है। अपने लक्ष्य – आत्मानुभूति से भटक जाना है। सिद्धियों का इस प्रकार से प्रयोग खतरे से खाली नहीं है। दुरूपयोग करने वाले का अनिष्ट भी हो सकता है।

बाह्य त्राटक यह अभ्यास की चीज है। विचार या विश्लेषण की नहीं।

विधि : मोमबत्ती को अपने सामने दो फुट की दूरी पर अपनी आँख की सीध में रखें। मोमबत्ती की लोह का ऊपर वाला किनारा और आँख की सतह का level एक होना चाहिए। आसन– सिद्धासन या पदमासन में बैठें। रीढ़ की हड्डी सीधी रखें। कमर– गर्दन और सिर एक line में होने चाहिए। न कोई गति न कोई कंपन हो मोमबत्ती जलाएं। दो मिन्ट के लिए आँखें बन्द करें। अपने सारे शरीर को सिर से पैर तक स्थिरता में अनुभव करें। ओम (ॐ) मन्त्र का जाप करें। गहरा लम्बा उच्चारण 5 बार करें। उस ध्वनि की गूंज सारे शरीर में होने दें। अपनी आँखें खोले–बिना पलक झपकाए मोमबत्ती की लोह पर देखना शुरु करें। दृष्टि लौ पर ही लगे। पुतलियां भी स्थिर हों। आंखों पर बल न पड़े। सहज भाव से देखें कि आप लो में डूबते जा रहे हैं। आँखें बन्द न करें। अगर आँखों में पानी भर जाए या कठिनाई का अनुभव हो तो दो चार second के लिए बन्द कर लें। फिर अभ्यास शुरू कर लें। मन को भी लो पर लगाएं। अगर मन इधर उधर भागे तो फिर से प्यार से लो पर ले आएँ। धीरे–धीरे समय 3 मिन्ट तक करें।

अब आँखें बन्द कर लें और मोमबत्ती की लोह को मन की

आँखों से भ्रूमध्य में देखें। ज्योति शिखा की इस लो को हिलने डुलने न दें। मन को भी स्थिर कर लें। मन में अगर विचार उठें तो साक्षी बन कर देखें। यह तब तक करते रहें – जब तक ज्योति की तस्वीर साफ तौर पर भ्रूमध्य में दिखती रहे।

यह है त्राटक क्रिया मोमबत्ती की लोह पर, फिर आँखें खोल लें – बिना पलक झपकाए देखना शुरू करें। आप की सारी चेतना इस लोह पर केन्द्रित होनी चाहिए। सामने सिर्फ लोह ही लोह हो। यह अभ्यास 3 मिन्ट या जितना सुगमता से कर सकें, या जितनी देर आप आराम से बैठक से करें। ओम (ॐ) मन्त्र का बार बार उच्चारण करें।

अन्तर त्राटक : अन्तर त्राटक क्रिया एक मानसिक अभ्यास है। इसके लिए शरीर का स्थिर होना ही काफी नहीं बल्कि मन का स्थिर होना भी बहुत जरूरी हैं। अन्तर त्राटक तब शुरू करना चाहिए जब बाह्य त्राटक में काफी सफलता मिल जाए।

विधि– रीढ़ की हड्डी – कमर गर्दन को सीधा रखें।

ऐसा तभी होता है जब आप **Proper** आसन में – पदमासन् – सिद्धासन में बैठें। पूरे शरीर को स्थिर रखें। अगर यह आसन न लगे तो सुखासन में बैठें। मानसिक रूप से अपनी मांस पेशियों को और शरीर के जोड़ों को तनाव से बाहर यानि तनाव मुक्त रखते हुए शरीर को स्थिर रखें। धीरे–धीरे शरीर में हल्कापन महसूस करें। अब अपना ध्यान श्वास पर ले जाएं। श्वास को आते जाते साक्षी रूप में देखें। अब ऐसा अनुभव करें – श्वास की गति धीमी से धीमी होती जा रही है। ऐसा महसूस हो रहा है कि श्वास रूक गई है।

ओम की लम्बी धुन गहरी पांच बार करे।

"ओम मम" – "ओम मम" – "मम" धीरे–धीरे धीमी होती लुप्त हो जाए। अपनी चेतना को भ्रूमध्य में केन्द्रित करें। हो सके तो चमकते तारे को। वहां मन की आंखों से देखें। अगर तारा दिखाई न दे तो कल्पना करें कि वहां थोड़ी देर के लिए तारा दिखाई दे। फिर गायब – ओझल हो जाएँ तो कोई बात नहीं। देखना जारी रखें। तीन दिन के अन्दर दिखाई देगा विश्वास रखें। इतने बड़े आसमान में एक टिमटिमाता तारा।

लम्बे अभ्यास के बाद यह आन्तिरक तारा स्वाभाविक रूप से दिखाई पड़ेगा। जब आप को यह तारा दिखे तो समझो की नयी शक्ति का प्रार्दुभाव हो रहा है।

सतत् (लगातार) अभ्यास के बाद आप को भ्रूमध्य में एक आन्तरिक आंख का अनुभव होगा (तीसरी आंख) ज्ञान "चक्षु" का तीसरा नेत्र मनुष्य में विश्व चेतना का प्रतीक है। जैसे मैंने मोमबत्ती की लौ पर त्राटक का वर्णन किया है इसी तरह इसके अतिरिक्त भी बहुत सी चीजें हैं – जिन पर ध्यान त्राटक किया जा सकता है। "खुले आकाश" पर त्राटक के लिए खुले नीले बादल रहित आकाश से बढ़कर बाह्य जगत में शायद और कोई वस्तु अधिक उपयुक्त हो। नीला आकाश बहुत कुछ परमात्मा जैसा है। आसीम – आनन्त है। इसका न कोई आदि बता सकता है न अंत। चारों तरफ शान्त – मधुर मधुर वातावरण है। आकाश पर त्राटक करना – चाहो तो साधना के लिए आकाश पर खुली जगह बैठ जाएं। आकाश की और एक टक हो कर देखें। इसके विषय में सोचें नहीं – परन्तु देखते जाएं। ऐसा महसूस करें, एहसास करें कि आप का आकाश के

साथ एकाकार होता जा रहा है। 3 मिन्ट या 4 मिन्ट के पश्चात् आंखें बन्द करके अनुभव करें आपके भीतर भी बाहर की भांति चिदाकाश फैला हुआ है। यह स्थिति तब आएगी जब आप का मन शान्त और निश्चल हो जाएगा।

इसी प्रकार रात्रि के शान्त वातावरण में चन्द्रमा पर त्राटक किया जा सकता है। बरसात की ऋतु में आकाश पर त्राटक किया जा सकता है। बादल रहित आकाश उपलब्ध न हो तो चारों ओर फैले हुए गहन अन्धकार पर करें। आंखें पूरी खोल कर अन्धकार को एक टक देखें – बिना प्रकाश के अंधकार का दर्शन करें। अंधकार के सिवाय कुछ ओर न देखें। मन को भी अन्धकार में डुबाएँ। ऐसा महसूस करें कि आप अन्धकारमय हो गए हैं। 3–5 मिन्ट करने के बाद आंखें बन्द कर लें। ऐसा महसूस करें कि आप के अन्दर भी अन्धकार और शून्य सा हो गया है। यह तभी होगा जब मन और विचार शून्य होंगे। ईष्ट देवता पर भी त्राटक किया जा सकता है। उनसे तादात्मय स्थापित किया जा सकता है।

बात यह नहीं है कि आप किस वस्तु पर त्राटक कर रहे हैं उसमें रम जाएँ। त्राटक आत्मानुभूति की एक बड़ी शक्तिशाली क्रिया ह। इस क्रिया के द्वारा कई साधक ध्यान में उतरे हैं। त्राटक क्रिया – अलग अलग वस्तुओं पर त्राटक करना इस का अर्थ सच्च में यह है साधक की एकाग्रता में परिपक्वता पैदा करना, दृढ़ता अटलता को बढ़ाना।

इन युक्तियों द्वारा जल्दी से अपने उद्देश्य की प्राप्ति में आगे बढ़ना।

योग ज्ञान की सात भूमिकाएं

पुराने समय में सन्तों महार्षियों ने जिस तरीके से अध्यात्मबल को प्राप्त किया फिर प्राप्तव्य वस्तु का लाभ कर जिस सर्वित्कृष्ट स्थिति के भोक्ता बनने का सौभाग्य प्राप्त किया था। उसी स्थिति को प्राप्त करने के लिए हृदय तन्त्री में इच्छा पैदा होती है। जिस के हृदय में उत्कर इच्छा पैदा हो – जागृत हो – उसी में मनुष्यत्व है। अन्यथा मनुष्य देह धारण करने से ही मनुष्यत्व नहीं आता। परन्तु परमदयावान देवेश ने मनुष्य को जो उत्तम साधन प्रधान किए हैं। उन साधनों की शुद्धि करते हुए मनुष्यत्व की अपेक्षा अत्यन्त श्रेष्ठ गुणयुक्त देवत्व और उस से भी उच्च ईशत्व को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करने वाला वीर साधक ही मनुष्य नाम पाने के योग्य है।

इस जगत का प्रत्येक अणु – सजीव या नजीव प्रतिक्षण शुद्ध होकर विकास मार्ग में गतिशील हो रहा है। उसी प्रकार मानव प्राणी के भीतर भी अन्तिम सवर्त्किृष्ट स्थिति – मुक्ति स्थिति प्राप्त करने की अभिलाषा ज्ञात या अज्ञात भाव से रहती है।

भगवती ("श्रुति जी कहती") हैं – (श्रेत ज्ञानन्ना मुक्ति) इससे यह सिद्ध होता है ज्ञान प्राप्त हुए बिना मोक्षभिलाषी की मुक्त होने की आशा निर्थरक है। यह जानना चाहिए

"ज्ञान क्या है"

इस संसार में दिखने वाली प्रत्येक लोकिक विद्या दुखों की आत्यान्ति की निवृति और सुख की प्राप्ती करवाने में स्वर्था असमर्थ है। महार्षियों ने ज्ञान की सात भूमिकाएं बताई हैं।

(Seven stages)

1) शुभेच्छा 2) विचारणा 3) तनुमानसा

4) सत्वापति 5) असक्ति 6) पदार्थ भावनी

7) तुर्यगा

1) शुभेच्छा नित्या नित्या वस्तु विवेक वैराग्य आदि के द्वारा सिद्ध हुई फल में पर्यावसित होने वाली मोक्ष की इच्छा अर्थत् विविदिषा मुमुक्षता मोक्ष के लिए आत्र इच्छा ही शुभेच्छा है। मैं मूढ़ होकर ही क्यों स्थिर रहूं। मैं शास्त्रों एवं सत्पुरूषों के द्वारा जान कर तत्वों का साक्षात्कार करूंगा। इस प्रकार जब वैराग्य पूवर्क मोक्ष की इच्छा होने लगती है – इस स्थिति को ज्ञानी जनों ने "शुभेच्छा" कहा है।

2) विचरणा : श्री सदगुरू के समीप वेदान्तवाक्य के श्रवण–मनन करने वाली जो अन्तःकरण की वृति है – – वह सुविचारण कहलाती है। योग बशिष्ठ में ऐसा कहा गया है। शास्त्रों के अध्ययन मनन और सत्पुरूषों के संग तथा विवेक वैराग्य के अभ्यास पूर्वक सदाचार में आगे बढ़ना यह विचारणा नाम की भूमिका है। सतपुरूषों के संग सेवा और आज्ञापावन से सत्रशास्त्रों के अध्ययन मनन से तथा देवी सम्पदा रूप सदगुण–सदाचार के सेवन से उत्पन्न हुआ विवेक ही विचारणा है।

3) तनुमानसा : नियमबद्ध लगातार अभ्यास (ध्यान और उपासना) से मानसिक एकाग्रता प्राप्त होती है। इसके द्वारा सूक्ष्म वस्तु ग्रहण करने की समर्थय प्राप्ती होती है। उसे तनुमानसा कहते हैं।

सच्चिदानन्दधाम – पदब्रह्य – परमात्मा का चिन्तन करते करते उस परमात्मा में तनमय हो जाना – तथा बेहद वैराग्य और उपरति के कारण परमात्मा के ध्यान में ही नित्य स्थित रहने से मन का विशुद्ध होकर सूक्ष्म हो जाना ही तनुमानसा

नाम की भूमिका है। यह तीन भूमिकाएं जागृत कहलाती हैं। इसमें जीव और ब्रह्म का भेद स्पष्ट ज्ञात होता है। इसमें स्थित व्यक्ति साधक माना जाता है। ज्ञानी नहीं।

4) सत्त्वापतिः ब्रह्म और आत्मा के तदात्मय अर्थात् ब्रह्मस्वरूपे कात्मात्वका अपरोक्ष अनुभव ही सत्वापत्तिः नाम की चौथी भूमिका है। यह सिद्ध अवस्था है। इस भूमिका (stage) में स्थित महापुरूषों ("ब्रह्म सत्यं जग मिथ्या") का वास्तविक अनुभव हो जाता है। श्रीमद्भावद्ध गीता में इसी के निर्वाण "ब्रह्म" की प्राप्ति कहा गया है। जो पुरूष आत्मा में ही सुखी – आत्मा में ही रमण करता है और आत्मा में ही ज्ञानवान है। वह सच्चिदानंदन्न परब्रह्म परमात्मा के साथ एक ही भाव को प्राप्त होता है। ऐसी स्थिति में उस का इस शरीर और संसार से कोई संबंध नहीं रहता "ब्रहावेता" पुरूष के अन्तःकरण के शरीर और अन्तःकरण के सहित यह संसार स्वपन प्रतीत होता है। यज्ञवल्क्या जी – राजा अश्वपत्ति और राजा जनक आदि चौथी भूमिका में पहुंचे हुए माने गए हैं। इस दशा को प्राप्त पुरूष को जगत्त का भान होता है और शरीर तथ अन्तःकरण द्वारा सभी क्रियाएं सावधानी द्वारा होती हैं। यह भूमिका स्वपन कहलाती है।

5) अंसक्ति : सविकल्प समाधि के अभ्यास के द्वारा मानसिक वृतियों के निरोध से जो निर्विकल्प समाधि की अवस्था होती है वह अंसक्ति कहलाती है। इसे सुषुप्ति भूमिका भी कहते हैं। इस भूमिका में सुषुप्ति अवस्था के समान ब्रह्म से अभेद – भाव प्राप्त हो जाता है। जगत प्रपंच को भूला रहता है। परमवैराग्य और परमउपरति के कारण उस ब्रह्मप्राप्त ज्ञानी महात्मा का इस संसार और शरीर से अत्यन्त संधविच्छेद

ॐ
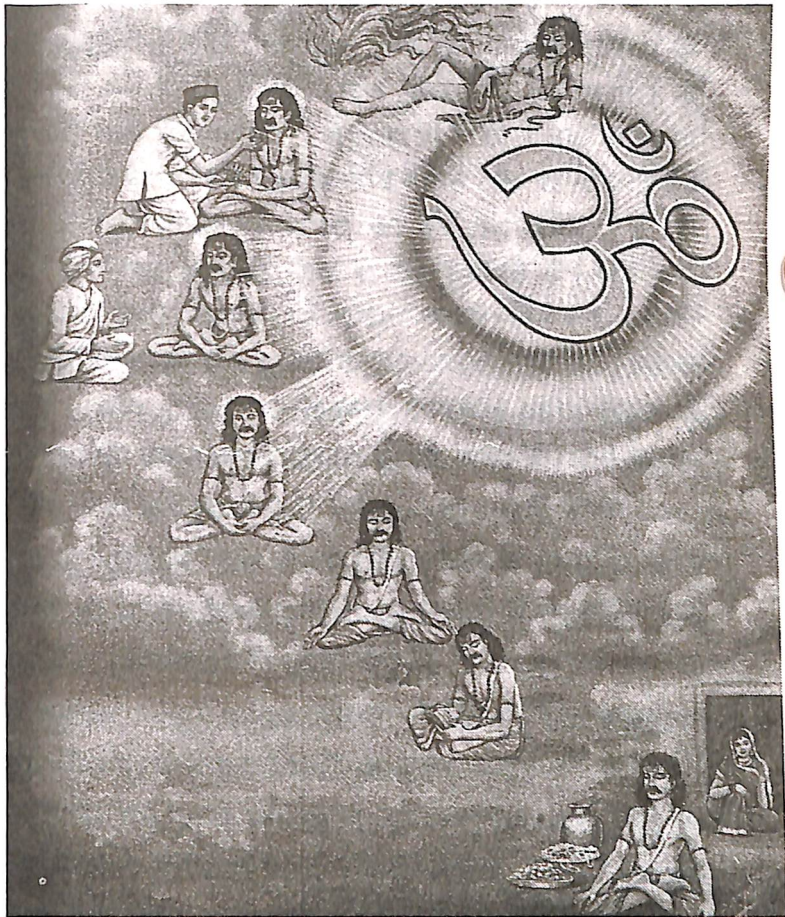
हो जाता है। इस पांचवी भूमिका को अंसक्ति कहा गया है। ऐसा पुरूष संसार में कर्म करने या न करने के लिए बाध्य नहीं है। श्री जडभरत जी इस पांचवी भूमिका में स्थिर माने जाते हैं।

6) पदार्थाभावनी : अंसक्ति नाम की पांचवी भूमिका के परिपाक से प्राप्त पटुता के कारण दीर्घकाल तक परपंच के स्फुरण का भाव पदार्थभावनी भूमिका अन्यकाल तक ही रहता है। छठी भूमिका में यह स्थिति लम्बे समय तक रह सकती है। इन दोनों भूमिकाओं में समय का ही भेद होता है। इस भूमिका को गाढ़ सुषुप्ति नाम से भी पुकारते हैं। जब ब्रह्म प्राप्त पुरूष छठी भूमिका में प्रवेश करता है– तब उसकी समाधि नित्य रहती है। इसके कारण उसके द्वारा कोई क्रिया भी नहीं होती। उसके अन्तःकरण में शरीर और संसार के सम्पूर्ण पदार्थों का अत्यन्त अभाव सा हो जाता है। उसे संसार के शरीर के बाहर भीतर का बिल्कुल ज्ञान नहीं रहता।

मुख में ग्रास दे देता हे तो जीह्या और दांतो द्वारा खाने की क्रिया हो जाती है और श्वास आते जाते हैं। इसलिए इस भूमिका को पदार्थभाविनी कहते हैं।

7) तुरीया : तुर्यगा ब्रह्मचिन्तन में निमग्न इस महापुरूष को पुनः किसी भी समय किसी भी अन्य पदार्थ की परिस्पूर्ति का ना होना यह ज्ञान की सतम् तुर्या भूमिका कहलाती है। इस स्थिति को प्राप्त महात्मा स्वैच्छा पूर्वक या परेच्छापूर्वक व्युत्थान को प्राप्त ही नहीं होता केवल एक ही स्थिति ब्रह्मस्थिति में सदा रमन करता है। छठी स्थिति के बाद सातवीं भूमिका खुद ही हो जाती है। ब्रह्मवेता ज्ञानी महात्मापुरूष के हृदय में संसार और शरीर के बाहिर – भीतर के लौकिक

ज्ञान का अत्यन्त अभाव हो जाता है। क्योंकि असके मन बुद्धि ब्रह्म में तदरूप हो जाते हैं। इस कारण इसकी व्युत्थान अवस्था न तो स्वता होती है न दूसरों के द्वारा प्रयत्न किए जाने पर ही होती है। जैसे मुर्दा जगाने पर भी नहीं जाग सकता – वैसे ही यह मुर्दे की भांति हो जाता है। अंतर इतना ही है कि मुर्दे में श्वास नहीं रहते – इसमें श्वास रहते हैं। ऐसे पुरूष का संसार में जीवन निर्वाह दूसरे लोगों के द्वारा केवल उस के प्रारब्ध के संस्कारों के कारण ही होता है। महात्मापुरूष इस सच्चिदानन्द ब्रह्म को नित्य ही प्राप्त हैं। उसके मन बुद्धि में भी संसार का अत्यन्त अभाव है – इसलिए ऐसे पुरूष को ब्रह्म विदिरिष्ठ कहते हैं। इस प्रकार ज्ञान की सात भूमिकाओं में – प्रथम तीन भूमिकाएं ज्ञान की प्राप्ति के लिए – योग्यता प्राप्त करने के निमितं बनाई गई हैं। चौथी से सातवीं भूमिका तक ज्ञान की दशा है। यह उन्नत दशा की भूमिका है। चौथी भूमिका में ही तत्व ज्ञान का यथार्थ प्राप्त हो जाता है। वही तत्व ज्ञान अंतिम चारों भूमिकाओं में स्थित रहता है। ब्रह्मविदिरिष्ठ महापुरूष से वार्तालाप न होने पर भी उसके दर्शन और चिन्तन से ही मनुष्य के चेतस्थमल विशेष का तथा आवरण का नाश हो जाता है। उसकी वृति परमात्मा की ओर आकृष्ट हो जाती है। उसका कल्याण ही कल्याण है।

मृत्यु और समाधि : अभी तक ध्यान की सैद्धान्तिक और व्यवहारिक व्याख्या की है और ध्यान की अलग अलग युक्तियों (Techniques) का वर्णन करने का प्रयास किया है। अब हम इस के अन्तिम चरण में ध्यान की आखिरी सीढ़ी – जीवन के अन्तिम क्षाण में प्रवेश कर रहे हैं। अब थोड़ी सी चर्चा मृत्यु

और समाधि के विषय में करेंगे। क्या हम कभी ख्याल करते हैं कि ध्यान की अन्तिम आखिरी अवस्था का नाम समाधि है। यह भी सुना होगा कि योगियों और सन्यासियां के पार्थिव जीवन की अन्तिम स्थिति को भी समाधि कहते हैं। सन्यासी लोग जब जीवन का त्याग करते हैं हम उस समय भी कहते हैं। वह समाधिस्थ हो गए हैं। इन की मृत्यु के बाद यहां इनको दफनाया जाता है। उसे भी समाधि कहते हैं। योगियों और सन्यासियों का दाह संस्कार नहीं किया जाता। जब वह सन्यास ग्रहण करते हैं – दीक्षा लेते हैं – तभी उनके संसारिक संबंधो का दाहसंस्कार कर दिया जाता है।

सन्यास के बाद उनका नाम संबंध आदि समाप्त हो जाता है। वे गेरूया वस्त्र धाराण कर लेते हैं। गेरूया वस्त्र के साथ उनका दुनिया का मायावी जीवन जल कर राख हो जाता है। जीवन समाधि के बाद भी और मृत्यु के बाद भी चलता रहता है। जब तक निर्वाण या मोक्ष नहीं हो जाता।

समाधि जीते जी मृत्यु का नाम है। सशरीर मृत्यु है। समाधि की अवस्था में समाधिस्थ योगी के शरीर को भान नहीं रहता। शरीर होते हुए भी लुप्त सा होता है। हमारे शरीर हैं – स्थूल – सूक्ष्म और कारण। समाधि स्थूल – सूक्ष्म और कारण शरीर के आगे की अवस्था है। इस अवस्था में केवल आत्म – तत्व या परमात्मा तत्व की अनुभूति होती है। यह उद्वेत की स्थिति है।

वैदिक ऋषियां ने ("मैं ब्रह्मा हूं") कह कर "कैवल्य" स्थिति की घोषणा की है। ऐसे तो बड़े से बड़े सन्त भी जगत को मिथ्या और परमात्मा को सत्य कहते हैं। परन्तुं जब तक

आत्मानुभूति नहीं होती तब तक संसार सच्च तथा परमात्मा झूठ लगता है। यह सब आत्मातत्व की अनुभूति पर ही है। यह समाधि या आत्मानुभूति इस बात को प्रमाणित करती है कि आत्मा है और मृत्यु का कोई अन्त नहीं है। भारतीय ऋषि तो शुरू से मानते हैं कि मृत्यु जीवन का अन्त नहीं है। जीवनकाल की गति की तरह चलती रहती है फिर यह वहीं पहुंचती है यहां से चले थे। हम परमात्मा से ही निकले हैं वहीं जा रहे हैं। यह हम पर निर्भर करता है कि एक जीवन में पहुंचते हैं या करेड़ों जीवनों में धूमते रहते हैं।

मृत्यु के विषय में पुराने समय से दो तरह के विचार हैं। एक तो है "भौतिक वादी" अनात्मवादी" या अनिश्वर वादी।

जो मानते हैं कि ईश्वर के साथ ही सब कुछ समाप्त हो जाता है। न चेतना रहती है – न आत्मा – न मन – न बुद्धि?

उनके विचारों के अनुसार शरीर जन्य है और शरीर के साथ ही इनका अन्त हो जाता है। अब तो वैज्ञानिक भी मानते हैं कि "चेतना" – "आत्मा" – "मन" ओर बृद्धि आदि शरीर में होने वाली क्रियाओं – शारीरिक तत्वों के घर्षण या मिश्रण का परिणाम है। आत्मा या चेतना का शरीर से अलग स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं मानते। भौतिक वादियों के अनुसार मृत्यु शरीर के मुख्य अंग जैसे "हृदय" – "फैफड़े" दिमाग आदि के काम न करने के कारण शरीरिक विघटन के कारण होती है। मृत्यु के बाद आत्मा या चेतना नाम की कोई चीज नहीं बच सकती। इस तरह के विचार मानने वाले लोग पश्चिम में हुए हैं। वह कहते थे चाहे कर्ज ले माल पूड़ा खाओ। सुख से जियो मरने के साथ ही सब कुछ खत्म हो जायेगा।

आज के मार्कसवादी या साम्यवादी भी आत्मा या चेतना का शरीर से अलग कोई स्वतन्त्र हस्ती नहीं मानते।

दूसरी तरफ ''आत्म वादी'' या ईश्वर वादी हे जो न केवल आत्मा का अलग अस्तित्व मानते हैं। केवल आत्मा की अमरता की घोषणा करते है। इनके अनुसार आत्मा शरीर के पहले भी थी शरीर के साथ भी है और मृत्यु के बाद भी रहती है। आत्मा अजर है, अमर है।

''श्री कृष्ण जी'' ने ''श्री गीता में – आत्मा की अमरता का उल्लेख किया है। आत्मा न जन्म लेती हे, न मरती है, न कभी ऐसा था, न होगा। यह नित्य है – शाश्वत है, नवीन है। शरीर के नष्ट होने पर यह नष्ट नहीं होती। इसे न शस्त्र काट सकता है, न आग जला सकती है, न पानी भिगो सकता है।

शरीर में योवन अवस्था आती है – बुढ़ापा आता हे किन्तु शरीर कायम रहता है। इस तरह अन्त होने पर भी आत्मा कायम (वरकरार) रहती है। आत्मा के अमर होने के विषय में विचार न केवल गीता में है परन्तु भारत की अनेक धार्मिक – आध्यात्मिक पुस्तकों में भरे पड़े हैं। पश्चिम को छोड़कर भारत में पनपने और फूलने वाले सभी धर्म जैसे हिन्दू – बुद्ध – जैन धर्म और सिख भारत की अमरता और पूर्व जन्म को मानते हैं। क्रिश्चन – मुसलमान – यहूदी और पारसी भी मानते हैं कि मृत्यु के साथ सब कुछ समाप्त नहीं होता किन्तु पुर्नजन्म के विषयों में उनके मतभेद हैं। पर इतना मानते हैं। उनके अनुसार मृत्यु के बाद आत्माएं क्यामत तक कायम रहती हैं। उस दिन निर्णय सुनाया जाता है।

मृत्यु के बाद के जीवन पर वैज्ञानिकों ने काफी छानबीन

की और Experiments किए हैं। अमरीका और कई पाश्चातय देशों में प्रेतात्माओं (मरे हुए व्यक्तियों की जीवात्माओं) से कुछ व्यक्तियों के माध्यम द्वारा सम्पर्क स्थापित किया गया। उनसे बातें की गई और उनसे लिखवाया भी गया। कुछ प्रेतात्माओं के फोटो भी लिए गए। ऐसे प्रयोग करने वालों में मैडम ब्लाटसेवस्की का नाम काफी विख्यात है। इस तरह कई वैज्ञानिकों ने मृत्यु के बाद के जीवन को स्वीकार किया है।

ध्यान के लिए रहस्य

अध्यात्मिक चिंतन और अध्ययन के आधार पर ऐसे विचार सामने आए हैं जो हमारी साधना में सहायक हो सकते हैं। इसके साथ–साथ कुछ अध्यात्मिक भी हो सकते हैं। कुछ गुढ़ आध्यात्मिक संशयों का निराकरण भी करते हैं। मार्ग दर्शा सकते हैं। उदाहरण के तौर पर साधक पूछता है कि हम उस परमात्मा को, जो सर्वव्यापक है अन्दर क्यों ढूंढते हैं बाहर क्यों नहीं। क्योकि वह सर्वव्यापक है। परमात्मा निर्गुण आर्वणनीय और अगोचर है। क्या गुणातीत के गुणों का कुछ अवारा दिला सकते हैं। ध्यान विधि में यह यम नियम या चित्त और चरित्रता की शुद्धता पर इतना जोर क्यों देते हैं। संसार में जो कुछ भी हो रहा है उसकी इच्छा से हो रहा है। फिर हम भले बुरे के लिए उत्तरदायी क्यों हैं। हम इन्हीं गूढ़ तथा जटिल अध्यात्मिक प्रश्नों का उत्तर देने का यत्न कर हरे हैं। परमात्मा को हम अपने अन्दर ही क्यों ढूंढे।

ईश्वर की अनुभूति के लिए हमारे ऋषियों – मुनियों ने भी ध्यान में अन्दर झांकने की सलाह दी है।

उन्होंने हमें ही नहीं दी है – परन्तु जोर दे कर दावा किया है कि इसी मार्ग पर चल के उन्हें परमात्मा की प्राप्ति हुई है।

बहुत से लोगो का प्रश्न है कि परमात्मा कण–कण में व्यापत है। उन्हें हम बाहर क्यों नहीं देख सकते। हमारी समझ में इसके कई उत्तर हो सकते हैं।

यह बात बिल्कुल सत्य है कि परमात्मा हमारे अंदर–बाहर विद्यामान है। श्री राम के परम उपासक तुलसीदास भी ब्रह्म के निराकार रूप को स्वीकार करते हैं। उन्होंने इस पंक्ति में कहा है। ''सीया'' ''राम मय'' सब जग जानी।

वह हमारे अंदर भी हैं और हमारे सब से नजदीक भी हैं। इसलिए उसे पाने का सरल तरीका यही है कि उसकी खोज (तालाश) अंदर ही करें। जो चीज हमारे घर में है उसे हम दूसरे के घर ढूंढने क्यों जाएं। योग के सुविख्यात और सर्वमान्य आचार्य पतंजलि ने अपने ग्रंथ योग सूत्र में आत्मानुभूति की विधि (टैकनीक) को अष्टांग योग द्वारा दर्शाया हैं। इस टैकनीक पर चलकर बहुत से लोगों ने ध्यान लगाया है। तीसरा सब से महत्वपूर्ण कारण यह है कि बाहर की दुनिया को जानने के लिए जो हमारे पास साधन है।

हमारी ज्ञानेन्द्रियां –आंख – नाक – कान – जीवहा और त्वचा।

बाहर के जगत का जो ज्ञान भी हमारे पास है वह ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ही संचित है। सब जानते हैं कि हमारी ज्ञानेन्द्रियों की ग्रहण क्षमता कितनी सीमित है। भौतिकवादी वैज्ञानिक जो कुछ ज्ञान इन इन्द्रियों के माध्यम से प्राप्त करते हैं उसे ही प्रमाणित मानते हैं। परंतु इसके उल्ट अध्यात्मवादियों का मानना है आत्मा इतनी सूक्ष्म है हम उसे ज्ञानेन्दियों की सीमा में नही बांध सकते। मानव इन्द्रियों से

ज्यादा शक्तिशाली कुछ जानवरों की इन्द्रियां हैं। जैसे की बिल्ली – उल्लू की आंखें रात के अंधेरे में मानव की आंखों से अधिक अच्छे तरीके से देख सकती हैं। इसी तरह कुत्ते की ग्राण शक्ति मानव की ग्राण शक्ति की तुलना में ज्यादा संवेदन शील है।

फिर परमात्मा जो सूक्ष्म अतिसूक्ष्म है, सर्वव्यापी है, वह ज्ञाननेन्द्रियों की पकड़ में कैसे आ सकता है।

मनुष्य को ज्ञानेन्द्रियां क्यों मिली हैं। – बाहर के जगत का ज्ञान प्राप्त करने के लिए। वैज्ञानिक इन्द्रियों को ही ज्ञान का एकमात्र प्रमाणक साधन मानते हैं। वह कभी भी इसके द्वारा परमात्मा का सूक्ष्म अतिसूक्ष्म चेतना का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते। इन्द्रियों के द्वारा वह भौतिक ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

आध्यात्मवादियों योगियों का कहना है कि ज्ञानेन्द्रिया न केवल आत्मानुभूति कराने में अक्षम है केवल बाधक है। उनका अनुभव है कि जब तक ज्ञानेन्द्रियों की क्रियाओं को बन्द नहीं करते तब तक ध्यान की गहराई करने की एक ही टैकनीक है। ''प्रत्याहार''।

ज्ञानेन्द्रियों का आहार क्या है (आंख का भोजन रूप – कान का भोजन ध्वनि आदि को बन्द करने का नाम ही प्रत्याहार है।) अन्तिम यात्रा के लिए अनिवार्य है।

जब हम परमात्मा की अनुभूति अपने अंदर कर लेते हैं। फिर बाहर की दुनिया देखने में अक्षम हो जाते हैं। ''गीता जी'' में ''श्री कृष्ण'' जी कहते हैं। – जो अपने को दूसरों में और दूसरों को अपने में देखते हैं वह सच्चे ज्ञानी हैं। जो

भागवान मुझ में विद्यामान है। वहीं दूसरों में हैं। क्राइस्ट भी कहते है। **"Kingdom of God" is within** परमात्मा का निवास'' अन्दर है। परमात्मा का न कोई गुण है – ना आकार है, न रूप है, निर्गुण है, एवम् निराकार है। जब उस का कोई आकार रूप ही नहीं है फिर उसकी सीमा कैसे हो सकती है। वह आसीम है – अगोचर है – अदृश्य है – अजन्मा है। उसकी अनुभूति की जा सकती है। उसे शब्दों में नहीं बांधा जा सकता। उसके गुणों का बखान नहीं किसा जा सकता। वह रहस्यमयी शक्ति है वह रहस्य ही बना रहता है। वेद–पुराण उपनिषद भी व्याख्यान करने के पश्चात कहते हैं नेति नेति अर्थात् यह भी नहीं – यह भी नहीं। उसके बारे में जितना कहा जाए उतना ही कम है। बुद्धि और मस्तिष्क के धनी लोगों ने शब्दों में शब्दातीत को बांधने की जितनी कोशिशें अभी तक मनुष्य ने की – सीमित बुद्धि के लिए की हैं। उनमें सफल हुए हैं। तीन शब्दों वाला यह शब्द – ''सच्चादन्नद'' – ''सत''– ''चित'' और आनन्द। इन तीनों गूढ शब्दों को यदि आप अच्छी तरह से समझ लें तो उस गुणतीत निर्गुण ब्रह्म के गुणों का कुछ कुछ आभास आप को हो जायेगा। सत्: सत् का सरल अर्थ है – वह चीज जो सदा रहे। एक सा रहे। **Ever Remain - Ever Green** जिस में कोई परिवर्तन न हो। जिसमें परिवर्तन हो सत् नहीं है।

इस जगत में कुछ भी ऐसा नहीं जो एक सा रहता है। यह सब परिवर्तन – गतिशील है। ऐसा होता रहेगा। भारत के मनिषियों ने भी यही कहा है कि यह जगत मिथ्या है। उनको परमात्मा को सत्य मानना शाश्वत मानने का यही तात्पर्य था कि वह बदलने वाला नहीं हैं। हमारे ऋषियों मुनियों ने बहुत

लम्बी खोज करके पाया कि कुछ जो नहीं बदलने वाली हैं उसे "आत्मा" "परमात्मा" या "ब्रह्म" कहा। इसके बिना सब बदल रहा है। चाहे हमें अनुभव हो या न हो परन्तु परिवर्तन शील है।

अब हम देखते हैं जो हर वस्तु परिवर्तशील है उस सारे परिवर्तनों के बावजूद कायम रहता है। उदाहरण के तौर पर आप कोई वस्तु ले लें। आप उसके मूल तत्व को नष्ट नहीं कर सकते। उसके रूप और नाम को बदल सकते हैं। गुण को नहीं।

पानी की एक बूंद – भाप – बर्फ – बादल में बदल सकती है। जिन तत्वों से बनी है। वह नहीं बदल सकते। अपने शरीर को ही लीजिए। जिन तत्वों से यह बना है। मृत्यु के बाद उनमें ही बिखर जाता है।

चित्त : चित्त का अर्थ है – चेतना (**conciousness**) जानने की शक्ति रखने वाले परमात्मा का नाम "सर्वज्ञ" है। उसका दूसरा नाम "चैतन्य" है। विज्ञान जिस अर्थ में प्रकृति शब्द का इस्तेमाल करता है – उस अर्थ में परमात्मा प्रकृति नहीं है। इसलिए कि विज्ञान – प्रकृति या उसके मुलतत्व उर्जा (**Energy**) को जड़ मानता है। जब कि परमात्मा चेतन है। सब कुछ जानने वाला सर्वज्ञा और अर्न्तयामी हैं। कुछ लोग कहते हैं – पूछते हैं। कि अगर परमात्मा चित्त है – चैतन्य है तो फिर जिन वस्तुओं में चेतना नहीं है क्या उनमें ब्रह्म व्याप्त नहीं है। यह कहना बिल्कुल गलत है मैंने अभी–अभी सत्त – चित्त के **Topic** में बताया है कि जिस तरह से परिवर्तनशील जगत के मूल में अपरिवर्तनशील ब्रह्म तत्व विद्यमान है उसी

तरह अचेतन (जड़) दिखने वाली चीजों जैसे पत्थर – मिट्टी इत्यादी से भी चेतन तत्व में सूक्ष्माति सूक्ष्म रूप समें विद्यमान है सारा जगत ही उस ब्रह्मतत्व में व्याप्त है।

ईशावास्योपनिवंद – इस सत्क के बारे में कहती है

ईशावास्यमिदम यतिकिचत जगत्यामजगत

इसका अर्थ है कि संसार में जो कुछ भी है – वह सब ईश्वर से ओत प्रोत है।

आनन्द – अब हम "निर्गुण" का तीसरा और अन्तिम "गुण" ले "आनन्द"।

आप गहराई में जा कर सोचें – विचार करें कि संसार का हर प्राणी आनन्द की तालाश में भटक रहा हे। हम जो कुछ भी करते हैं – चाहे वह गलत हो या ठीक परन्तु लक्ष्य एक है। आनन्द प्राप्ति।

यह दूसरी बात है कि उसकी तालाश में कुछ ऐसे कर्म होते हैं जो और मुसीबत का कारण बन जाते हैं।

आम मानव शान्ति पाना चाहता है – लेकिन समय के साथ उसने अपनी सोच को उल्टे ढंग स बदल दिया। जिस से शांति का अनुभव बहुत कठिन है। हमारे ऋषियों ने हजारों वर्षों के अनुभव के बाद इस नतीजे पर पहुंचे कि संसारिक वस्तुओं की प्राप्ति से सुख आनन्द प्राप्त नहीं होता। वह शाश्वत नहीं। जब संसार मिथ्या है तो यह वस्तुएं शाश्वत कैसे हो सकती हैं। जो चीज शाश्वत है उसी में आनन्द है और मिथ्या वस्तुओं में – नहीं रहने वाली वस्तुओं में आनन्द कैसे हो सकता है।

Materiallistic दौड़ में कोई सीमा नहीं है – मानव

कहां तक दोड़ेगा। मान लो मुझे 20000 रू चाहिए। मैं दुखी हूं। रूपए मिल गए तो खुश प्रसन्न, परन्तु जब वह खर्च हो जायेंगे तो मैं फिर दुखी। संसारिक सुख सुविधा देने वाली चीजे धन, महल, कपड़े, पदवी, यश की प्राप्ति के बाद भी प्रज्ञावान मनुष्य ने जाना कि इतना होने के साथ भी सच्चे आनन्द की प्राप्ति नहीं हो पा रही है। फिर वह बाहर की दुनियां को दोड़ कर सच्चे आनन्द की तालाश अन्दर की दुनियां में करने लगा। किसी समय वह तालाश करते– करते अन्दर झांकते झांकते समाधि में उतर गया। उसने पाया कि जिस आनन्द के लिए वह बाहर भटक रहा था वह तो अन्तरात्मा में है। जरूरत है अपने अन्दर की गहराई में झांकने और उतरने की। आत्मानुभूति करने की।

यह आनन्द का तत्व ही परमात्मा तत्व है। जिस समय तक हमें इस आनन्द की प्राप्ति नहीं हो जाती तब तक सुख का अभाव, बेचैनी बनी रहती है। संसार के लाखों सुख मिल कर भी इस कमी को पूरा नहीं कर पाते। इसलिए हमें एक दृढ़ निर्णय तो लेना चाहिए की आज ही अन्दर की गहराई में गहरे उतरने और इस में सत् – चित्त और आनन्द के मोती खोज खोजने लगे। स्थान की गहराई में उतरने के लिए मैंने पहले ही 7–8 अध्याय में कुछ नियम सर्वमाननिय "स्वामी विवेकानन्द" जी के वचनों अनुसार श्री पतंजलि जी के अनुसार वर्णन करने की कोशिश की है। ज्यों–ज्यों हम पुस्तक के पूर्ण (complete) होने की दिशा में आगे बड़ रहे हैं जो मन में कुछ अनुभव मेरे सामने आ रहे हैं। उनके आधार पर हमें कुछ गलतियां सख्ती से दूर करनी चाहिए। उनका वर्णन कर रहा हूं। आशा है कि ध्यान की गहराई में उतरने के लिए सहायक

होंगी। मैंने पहले भी ''ज्ञानेन्द्रियों'' और प्रत्याहार'' के विषय में वर्णन किया है। मन की शुद्धता के लिए अष्टांग योग में ''यम'' – ''नियम'' का विद्यामान है।

''यम'' (अंहिसा, सत्य, असत्य, ब्रह्मचर्य और ऊपरिग्रह) द्वारा हम दूसरों के साथ अपने संबंध को शुद्ध और सात्विक बनाते हैं। ''यम '' और ''नियम'' धर्म की जड़े हैं। यह योग की प्रगति को प्रशस्त करने वाली है। इनका उल्लंघन – अवेहलना कर के हम आगे नहीं बढ़ सकते। अगर हम आगे नहीं बढ़ सकते तो फिर ध्यान या गहराई में – समाधि में कैसे पहुंच सकते हैं।

हमें अपने आप को अंहकार के अंधकार से बाहर निकालना है। हमें यह नहीं सोचना कोई कार्य पूरा हो गया तो मैंने किया। यह कर्त्तपन से दूर होना है। मनुष्य सफलता का नाम अपने से जोड़ता है। कोई महत्वपूर्ण कार्य उसके द्वारा हो गया तो कहता है मैंने किया है। परीक्षा में प्रथम आता है तो बड़ी शान से फूला नहीं समाता कहता है कि मैं प्रथम आया हूं। मेरी परिश्रम का परिणाम है।

जब हाथ में सफलता नहीं लगती – विपत्ति और आपत्ति आती है तो जब दोष भाग्य और परमात्मा के सिर पर थोपता है। किसी अंग्रेज ने कहावत में कहा है कि ''**Man is ungreatful by birth or by nature**'' अब थोड़ा सा विश्लेषण करें ओर देखे की कौन किस का जिम्मेदार है। जैसे हम अच्छाई का सेहरा अपने सिर पर लेते हैं तो इसी तरह असफलता को भी अपने सिर पर लेना चाहिए।

सच्चाई यह है कि शुद्ध अध्यात्मिक दृष्टि से अस्तित्वगत

दृष्टि से देखें तो परमात्मा के सिवा और कोई करता ही नहीं। संसार की रचना उसी ने की है। जो कुछ यहां कहीं हो रहा हे उसकी इच्छा से हो रहा है। दुनिया का चालक वहीं है। तुलसीदास जी ने तो जहां तक कहा है कि उसी की मर्जी के बिना पत्ता भी नहीं हिलता है। भागवत गीता में भगवान श्री कृष्ण जी ने भी यही कहा है कि मेरी मर्जी के बिना पत्ता भी नहीं हिल सकता। फिर हमें क्या अधिकार है यह कहने का यह कार्य हम ने किया – यह महल मैंने बनाया है यह परिवार मैं चलाता हूं। अच्छाइयां और सफलताएं मेरी कामयावी है। बुराइयाँ हार और परेशानियाँ मेरे लिए किसी ने पैदा की है। असफल होना मेरे प्रारब्ध में था। शायद देवी देवता ही मुझ से नाराज हैं। अच्छाई – बुराई सब ईश्वर और प्रारब्ध के हाथ में है। हमें दो तरफा – खेल नहीं खेलना चाहिए।

संसार में किसी भी घटना – किसी भी चीज को देखने के दो ढंग है। ''भौतिकावादी'' और दूसरा ''अध्यात्मक''। भौतिकतावादी अहम् से भरा हुआ – दूसरा अंहम से शून्य। एक में कर्ता ''मैं'' होता है– दूसरे में ''वह'' अर्थात परमात्मा जो लोग ध्यान की गहराई में उतर गए – उन्होंने पहचाना कि कर्ता सदा एक ही है। वह ''वह'' ही है। सृष्टि कर्ता वह है। सृष्टि को चलाने वाला भी वह ही है। अध्यात्मिक दृष्टि से हम देखें तो जगत में सब से बड़ा पाप हम एक ही कर सकते हैं। वह पाप क्या है। अपने आप को कर्त्ता मानना दुनियां में हमें ऐसे लोग भी मिलते है। जो कहते हैं उसने किया है। यह उनका कहना उनके 'हृदय' से नहीं – उनके कण्ठ से निकलता ह। किसी और मूड में किसी और स्थिति में वह कहे। यह सब उन्होंने किया है। ऐसा कहना मैंने यह सब नहीं

किया – यह उसी दिन सब होगा। जिस दिन आपका अहंम विलीन हो जायेगा। प्रेम की गली बहुत ही संकरी मुश्किल होती है। इसमें दो नहीं समाते। यह तब होता है जब समाधि लग जाती है। सुख और दुख एक सा हो जायेगा। सफलता और बिफलता दोनों एक से लगेंगे। दोनों का कत्ता एक ही परमात्मा है द्वन्द समाप्त हो जायेगा। तब तक अद्वैत की स्थिति नहीं आ जाती। जब तक आप अपने को ही कर्त्त मानेंगे।

परमज्ञानी वही है जो अपने को कर्त्ता नहीं मानता, यश और अयश में भी, हर हालत में अपने आपको परमात्मा का पात्र मानता है। हम खुद कुछ भी नहीं कर रहे है।। ईश्वर स्वयं करवाता है। यह सच्ची अनुभूति तो साधना के बाद होगी। परन्तु अगर हम अभी से यत्न शुरू कर दें तो प्रभु कृपा से एक–एक कदम करके महान लक्ष्य की ओर बढ़ सकते हैं। आज से ही आओ हम एक संकल्प लें कि आज से ही ध्यान धारणा का अभ्यास करके अपनी मंजिल की ओर बढ़े।

योग साधना में आने वाले विध्न और उन्हें दूर करने के उपाय

समाधिकाल में विध्न बलपूर्वक आने लगते हैं। योगी को चाहिए कि उन विध्नों का धीरे–धीरे त्याग करे। भगवान् पतंजलि ने योगदर्शन में कहा है कि व्याधि, स्तयान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति भ्रान्दिर्शन, अलब्धभूमिकत्व और अनवस्थितत्व – यहा नौ चित्त के विक्षेप हैं। यही अन्तराय (विध्न) कहलाते हैं। यह अन्तराय क्या है और किस प्रकार इनसे छुटकारा मिलता है। इस बात को योग मार्ग में प्रवेश करने के पहले जानना आवश्यक है।

शरीर को चरण करने में समर्थ होने के कारण धातु नाम

को प्राप्त हुए बात, पित और कफ की न्यूनाधिकता खाए तथा पिये हुए – आहार पदार्थो के परिणामस्वरूप इस की न्यूनाधिकता और मनसहित एकादश इन्द्रियों (11) के बल की न्यूनाधिकता को (वयाधि) "अथवारोग" कहते हैं।

व्याधि होने पर चित्तवृति उसमें अथवा उसे दूर करने के उपायों में लगी रहती हैं। इससे वह योग प्रवृत नहीं हो सकती। इसी कारण व्याधि की गणना योग के विघ्नों में होती है।

अजीर्ण – नींद की खुमारी – अति परिश्रम प्रभृति से ब्रह्माकार वृति का अभाव हो जाता है – कमी आ जाती है। अजीर्ण आदि लय के कारण रूप विघ्नों के निवारण के लिए पथ्य और लघु भोजन करने से तथा प्रत्येक व्यवहार में युक्ति एवं नियम के अनुसार चलने से और उत्थान प्रयत्न द्वारा चित्त को जागृत करने से ये विघ्न दूर होते हैं। इस विषय में "श्री कृष्ण" भगवान जी ने भी अर्जुन के प्रति कहा है।

हे अर्जुन। जो अधिक भोजन करता है, जो बिल्कुल बिना खाए रहता है, जो बहुत सोता है तथा जो बहुत जागता है उसके लिए " योग नहीं है" बल्कि जो नियम पूर्वक भोजन करता है। नियमत विहार करता हे तथा कर्म करने में भी नियमपूर्वक रहता है तथा जिसका जागना और सोना भी नियमपूर्वक होता है। उसके लिए योग दुख का नाश करने वाला होता है। योग साधना की इच्छा होने पर देश काल की विपरीतता की कल्पना कर के योग साधन की प्रवृति में जो चित्त की असमर्थता होती है उसे "स्तयान" कहते हैं।

देशकालादि कल्पित विपरीतता को दूर करने में साम्थर्यरहित चित्त की यह अयोग्ता भी योग में प्रवृत होने नहीं देती।

इसलिए यह भी योग में ''विघ्नरूप'' है।

यह वस्तु ऐसी ही है या अन्य प्रकार की है। ऐसे विचार परस्परविरोधी और उभयकोटि को वश करने वाला विज्ञान ''संशय'' कहलाता है। योग होता है या नहीं ? ''गुरू'' और ''शास्त्र'', ''योग'' और योगसाधन की जो महिमा करते हैं वह ''सत्य'' है या ''असत्य''। योग का फल ''कैवल्य'' होता है या दूसरा कुछ। ''ईश्वर – प्रणिधान'' से समाधि लाभ'' तथा ''कैवल्य'' प्राप्ति सिद्ध होती है या नहीं।

इस प्रकार अनेकों विरोधी तथ उभयकोटि को वश करने वाले ज्ञान को संशयरूप समझना चाहिए। इस प्रकार की शंका वाले विचार योग में निश्चलता प्रवृत नहीं होने देते।

संशय का नाश कर भ्रान्तिदर्शन में भी श्रीसद्गुरू के वचन और शास्त्रप्रमाण में श्रद्धा रखनी चाहिए।

''समाधि'' साधन में प्रयत्न न करना अथवा उसमें उदासीनता रखना ''प्रमाद'' कहलाता है। ''कफदि'' के द्वारा शरीर के भारी होने तथा ''तमोगुण'' के द्वारा ''चित्त'' के भारी होने से भी ''योग'' साधना में प्रवृति नहीं होती। इसे ही आलस्य कहते हैं। विषय तृष्णा योग की प्रबल विरोधिनी है। वह वृत्ति को अर्न्तमुखी नहीं होने देती। अगर कभी यत्नपूर्वक वृत्ति अन्तर मुखी होती भी है तो फिर अल्प समय में ही विषयों के स्फुरण द्वारा चित्त को क्षुब्ध कर के उसे बहिमुर्ख कर देती है। स्मृति भी यही कहती है।

यतियों का संगरहित रहना मुक्ति का स्थान है – संग से सारे दोष उत्पन्न होते हैं। योगारूढ भी संग से अद्योगति को प्राप्त होते हैं। अल्प सिद्धि वाला अपकू योगी यदि संग से

अद्योगति को प्राप्त हो तो इस में आश्चर्य ही क्या है। विषय तृष्णा में दोष दृष्टि करने से यह विघ्न दूर होता है। जिस प्रकार लड्डू में विष डाला गया है – यह बात जान लेने पर भूखा भी उसे खाने की इच्छा नहीं करता। इसी तरह जिन्होंने शास्त्रों का अध्ययन किया हो – गुरू वचन याद रखा हो उन्हें भोगने की इच्छा नहीं रहती।

सदगुरू तथा योगशास्त्रों द्वारा उपदिष्ट योगसाधना में असाधनत्ववृद्धि को भ्रान्तिदर्शन या "विपर्यज्ञान" कहते हैं। यह भ्रान्ति दर्शन भी विपरती ज्ञान तथा विपरीत प्रवृति के कारण साधक को योग में प्रवृत नहीं होने देता। "मधुमती" आदि योग की भूमिकाओं में किसी भूमिका की प्राप्ति होने पर भी विस्मय अथवा कर्तव्य के विस्मरण या ज्ञान के द्वारा उसमें चित्त को सुस्थिर न करना अनवस्थितत्व कहलाता है।

योग की किसी भूमिका प्राप्त होने पर – इसी से भलि भांति स्थिरता हुई है। किसी कारण से ऐसा मान लिया जाये और उससे आगे की सुस्थिरता के लिए प्रयत्न न किया जाये तो उस को उत्तर भूमिका की प्राप्ति तो होती ही नहीं – साथ ही साथ ही उस भूमिका से भी भ्रष्ट हो जाता है। चित्त को विक्षिप्त करने वाले ये नौ योग मल योग के विघ्न कहलाते हैं। संशय और भ्रांति दर्शन रूप वृत्तियां भी वृतिनिरोध रूप योग की विरोध ानी है और व्याधि आदि वृति न होने पर भी वृतियों के साहचर्य से योग में बाधक है। भगवान पतंजलि भी इन का नाश करने के लिए ही कहते हैं। उस विक्षेप तथा उसके साथ होने वाले दुखादि की निवृति के लिए एकतत्व का अभ्यास करना चाहिए। इसी प्रकार योगवसिष्ठ में भी कहा है। जब तक "एकतत्व

दृढ़" अभ्यास से मन को पूर्ण रूप से जीत नहीं लिया जाता तब तक अर्धरात्रि में नृत्य करने वाले बेतालों के समान वासनाएं हृदय में नृत्य करती रहती हैं।

इस तरह अनेक विघ्न योगी की समाधि में विघ्नरूप से आते हैं इस लिए उन को हटाने के लिए धीरे धीरे यत्न करना चाहिए।

बहुविघ्नानि श्रेयस्कर कार्य में अनेकों विघ्न आते हैं यह प्रकृतिक नियम है। इसलिए विघ्न करने वाले उपकरणों में लोभवश न फंसकर उनसे सदा सचेत रहना चाहिए।

योग में प्राप्त होने वाला अपरा एवं परा सिद्धियां

सवर्था सिद्धिविहीन व्यक्ति की कहीं कोई प्रतिष्ठा नहीं होती और विशेष सिद्धियों के स्वाभाविक निधान होने के कारण परमेश्वर सर्व समर्थ एवं शक्तिमान होता है और उसकी सर्वत्र पूजा प्रतिष्ठा होती है। परंतु उच्चकोटि का ज्ञान विज्ञान जीवनमुक्ति एवं दिव्य शक्ति आदि की सिद्धियां सब को अभीष्ट होती हैं।

अणिमादि अष्टविध सिद्धियां तो प्रसिद्ध ही हैं। यह सिद्धियां अंहकार आदि को जन्म देती हैं। साधक अपने मान सम्मान के लिए चम्तकार आदि के रूप में प्रदर्शन करता है तो ये ही सिद्धियां उसके "मोक्ष" आदि परा सिद्धियों की प्राप्ति में अन्त राय बन जाती हैं। उसका "पतन" का कारण बन जाती हैं। साथ ही इन सिद्धियों की शक्ति भी नष्ट हो जाती है। सिद्धि प्राप्त साधक को इन का उपयोग यदि आवश्यक हो तो यथासम्भव परोपकार के कार्यों तथा जीवमात्र के कल्याण के लिए करना चाहिए। इन्हे सदा गुप्त रखते हुए निरभिमान आगे

की साधना करते रहना चाहिए।

शरीर में इन्द्रियों तथा चित्त में विलक्ष्ण परिणाम उत्पन्न होने अर्थात् इनकी प्रकृति में विलक्ष्ण परिवर्तन होने को सिद्धि कहते हैं।

सिद्धियों के पांच भेद से पांच प्रकार के सिद्ध पुरूष भी माने जाते हैं।

इन के निमित पांच हैं : जन्म, ओषधि, मन्त्र, तप और समाधि वे सिद्धियां जिन की उत्पत्ति में केवल जन्म ही निमित है। जन्म जा सिद्धि है। जैसे पक्षियों आदि का आकाश में उड़ना अथवा कपिल आदि महार्षियों में उनके पूर्व जन्म के पुण्यों के प्रभाव से जन्म से ही सांसिद्धिक ज्ञान का उत्पन्न होना। पारे आदि रासायनों के उपयोग से शरीर में विलक्ष्ण परिणाम उत्पन्न करना "ओषधिजा" सिद्धि है।

मन्त्र द्वारा प्राप्त सिद्धि "मन्त्रजा सिद्धि है"। जैसे स्वाध्याय इष्टदेव का मिलना है। तप से अशुद्धि के दूर हो जाने पर शरीर और इन्द्रियों की सिद्धि होती है। यह "तपोजा" सिद्धि है। योगाभ्यास द्वारा समाधि प्राप्त सिद्धि समाधिजा सिद्धि है।

यहाँ पर योग एवं तप के प्रभाव से प्राप्त होने वाली मुख्य सिद्धियों का ही विशेष उल्लेख किया है।

"मोक्षरूपी" परम सिद्धि की प्राप्ति "निर्वीज समाधि" का फल है। सब प्रकार की दिव्य ऐश्वर्यरूपी नाना प्रकार की अपना सिद्धियां "सम्प्रज्ञात" समाधि के संबंध रखती है। योगाभ्यास करने वाले योगी महात्माओं को जो योग की विभिन्न सिद्धियां प्राप्त होती हैं। महार्षि पतंजलि के योग दर्शन के आधार पर सिद्धियों का परिचय देने का प्रयत्न है।

पहली सिद्धि : व्युत्थान संस्कारों का लय हो कर जो निरोध – संस्थाओं का प्रकट होना है तथा निरोध के क्षण में जो चित्त का धर्मोरूप में दोनों के साथ अन्वय है उसे "निरोध परिणाम – सिद्धि कहते हैं।" "निरोध" संस्कार के अन्तः करण की शान्ति प्रवाहित होती है। नानाविषयों के संस्कार से जो अन्तःकरण की चंचलता होती है उस सर्वार्थता का क्षय और एकाग्रता का उदय ही " अन्तःकरण" में समाधि का परिणाम है। तब "शान्तप्रत्यय" अर्थात् एकाग्रता परिणाम में सिद्धि की इच्छा रखने वाले योग का अन्तःकरण तरंग रहित जलाशय के समान वृतियों की सर्वार्थताओं से रहित होकर शान्त हो जाता है। इसी अवस्था का नाम "शान्तप्रतयय" है और "उदित प्रत्यय" अर्थात् शान्तप्रत्यय के साथ ही सिद्धियों की इच्छाजनित वासनाबीज के वेग से सिद्धि के उन्मुख योगी का अनतःकरण रहता है।

इसी अवस्था का नाम "उदितप्रत्यय" है। इन दोनों प्रत्ययो की समानतारूप चित्त की जो स्थिति है वही एकाग्रतापरिणाम है। इस से स्थूल – सूक्ष्मभूत और इन्द्रियों में भी धर्मपरिणाम "लक्षणपरिणाम" ओर अवस्था परिणाम वर्णित किए गए हैं ऐसा समझना चाहिए। पृथ्वीरूप धर्मो का जो घटरूप विकास है उसको "धर्मपरिणाम" कहते हैं। घट का जो अनागत लक्षण के त्यागपूर्वक वर्तमान लक्षणवाला हो जाना घटरूप धर्म का लक्षणपरिणाम है और वर्तमान लक्षण वाले धटका जो नयापन तथा क्षण–क्षण में पुरातनपन है उसको अवस्था परिणाम कहते हैं। अतएव धर्म – लक्षण और अवस्था नामक तीनों परिणामों में संयम करने से योगी की भूत ओर भविष्यत् का ज्ञान हो जाता है।

दूसरी सिद्धि : शब्द, अर्थ और ज्ञान के एक दूसरे में मिले

रहने से संकर अर्थात् घनिष्ठ मेल है। उनके विभाग में संयम करने पर सब प्राणियों की "वाणी" का ज्ञान होता है।

तीसरी सिद्धि : संस्कारों के उजागर होने से योगी को पूर्व जन्म का ज्ञान होता है। मनुष्य के छायारूप निशान को यन्त्र द्वारा धारण करने की शक्ति उत्पन्न करके वैज्ञानिक फोटोग्राफ में मनुष्यमूर्ति को जैसे प्रकाशित कर देते हैं। – वैसे ही संस्कारों में संयम करने से संस्कार के कारण रूप कर्मों का यथावत् ज्ञान योगी को हो सकता है।

चौथी सिद्धि : ज्ञान के संयम करने पर दूसरे के चित्त का ज्ञान होता है। जन्मःकरण में जैसा गुण – परिणाम रहता है – वैसी ही उस अन्तःकरण से संबंध युक्त ज्ञान की स्थिति होती है। यदि किसी जीवन विशेष के अन्तःकरण का हाल जानना हो तो उसके आन की पर्यालोचना कर के उस जीव के मन का सब हाल जान सकते हैं।

पांचवी सिद्धि : कायागत रूप में संयम करने से ग्राह्य शक्ति का स्तम्भ हो जाता है, और शक्ति स्तम्भ होने से दूसरे के नेत्र के प्रकाश का योगी के शरीर के साथ संयोग नहीं हाता– जब योगी के शरीर का अर्न्तधान हो जाता है। जैसे रूपविषयक संयम करने से योगी के शरीर को कोई नहीं देख सकता – उसी प्रकार शब्दादि पांचों के विषय में संयम करने से योगी के शरीर के "शब्द", "र्स्पश", "रूप", "रस" और "गन्ध" को पास में रहा हुआ पुरूष भी नहीं जान सकता।

छठी सिद्धिः सोपक्रम – जो कर्म शीघ्र फलदायक हो जाता है – उस शीघ्र कार्यकारी कर्म की अवस्था का नाम "सोपक्रम" है जैसे जल से भीगे हुए वस्त्र को निचोड़ कर

सुखा देने से वस्त्र शीघ्र सूख जाता है तथा "निरूपक्रम" – कर्म विपाक की मन्दता के कारण विलम्ब से फलदायक कर्म की अवस्था का नाम "निरूपक्रम" है।

जैसे बिना निचोड़ा पिण्डीकृत वस्त्र बहुत काल में सूखता है। इन दो प्रकार के कर्मों में जो योगी संयम करता है, उसको मृत्यु का ज्ञान हो जाता है। अथवा त्रिविध अरिष्टों से मृत्यु का ज्ञान होता है।

सातवीं सिद्धि मैत्री – मुदिता – करूणा और उपेक्षा आदि में संयम करने से तत्संबधी बल की प्राप्ति होती है। मैत्रीबल –करूणाबल – मुदिताबल और उपेक्षाबल की प्राप्ति कर के योगी पूर्ण मनोबल अर्थात् आत्मबल करता है जो शक्ति अन्तःकरण को इन्द्रियों में गिरने न दे कर – नियमित रूप से आत्मस्वरूप की ओर खींचती रहती है "उसी को " आत्मबल या तेज कहते हैं।

आठवीं सिद्धिः बल में संयम करने से योगी को हस्ती से बलादि प्राप्त हो सकते हैं। बल दो प्रकार का है।

"एक आत्मबल" – "दूसरा शारीरिक बल"। प्रकृति के विभिन्न होने से बल में स्वतन्त्रता है। जैसे सिंहबल – गजबल – बलशाली खेचर – पक्षियों का बल और बलशाली जलचरों का बल। जिस प्रकार के बल की आवश्यकता हो उसी प्रकार के बलशाली जीवों के बल में संयम करने से योगी को उसी प्रकार के बल की प्राप्ति हुआ करती है।

नवीं सिद्धि : ज्योतिष्मती प्रकृति के प्रकाश को सूदमादि वस्तुओं में न्यस्त कर उन पर संयम करने से योगी को सूक्ष्म – गुप्त और दूरस्थ पदार्थों का ज्ञान होता है। लय योगी अपने

अन्तर्राज्य में शरीर के ढिदलस्थान में शुद्ध तेज पूर्ण बिन्दु का दर्शन करता है। वह ज्योतिष्मती प्रवृति बिन्दुरूप से आविभूत हो कर जब स्थिर होने लगती है – तब वही बिन्दुध्यान की अवस्था है।

दसवीं सिद्धि : सूर्यनारायाण में संयम करने से योगी को "स्थूल" और "सूक्ष्म" लोकों का ज्ञान हो जाता हैं। "स्थूल" लोक प्रधानता नहीं "मृत्युलोक" है। "स्वर्ग तथा सप्त पाताल" यह "सूक्षम" लोक है और "ब्रह्मापडो" का ज्ञान लाभ करना भी "सूक्ष्म" लोक से सम्बन्ध युक्त ज्ञान है।

गयारवीं सिद्धि : चन्द्रमा में संयम करने से "नक्षत्रव्यूह" का ज्ञान होता है। ज्योतिष का सिद्धांन्त है कि जितने ग्रह है उन सब में चन्द्र एक राशि पर बहुत ही कम समय तक रहता हे। इससे प्रत्येक ताराव्यूहरूपी राशि की आर्कषण विर्कषण शक्ति के साथ चन्द्र का अति घन्ष्छि सम्बन्ध है। इस लिए उसी शक्ति के अवलम्बन से नक्षत्रों का पता लगाने के समय से चन्द्र की सहायता सुविधाजनक है।

बारहरवी सिद्धि : ध्रुव में संयम करने से तारों की गति का पूर्ण ज्ञान होता है। ध्रुव लोक हमारे सौर्य जगत से इतना दुरव्वर्ती है कि उसकी दूरता के कारण हम लोग उस को स्थिर ही देख रहे हैं।

तेरहवीं सिद्धि : नाभि चक्र में संयम करने पर योगी को शरीर के समुदाय का ज्ञान होता है। शरीर के सात स्थानों में सात कमल अर्थात् चक्र हैं जिन में छः चक्र की साधना कर के सिद्धि प्राप्त होने पर सातवें चक्र में पहुंचने से मुक्ति प्राप्त होती है। षटचक्रों में से नाभि के पास स्थित जो तीसरा चक्र

है उसमें संयम करने शरीर में किस प्रकार का पदार्थ किस प्रकार से है –वात–पित और कफ में तीन दोष किस रीति से हैं। चर्म – रूधिर – मांस – नरव – हाड – चर्बी और वीर्य यह सात धातुएं किस प्रकार से हैं। नाड़ी आदि कैसी है। इन सब का ज्ञान हो जाता है।

चौदहवी सिद्धि कण्ठ के कूप में संयम करने से भूख और प्यास निवृत हो जाती है। मुख के भीतर उदर में वायु और आहार आदि जाने के लिए जो कण्ठछिद्र है – उसी को कण्ठ कूप कहते हैं। यहीं पर पांचवां चक्र स्थित है। इसी से क्षुत्पिपासा की क्रिया का घनिष्ठ संबंध है।

पंद्रहवी सिद्धि : कर्म नाड़ी में संयम करने से स्थिरता होती है। कण्ठ कूप में "कच्छप" आकृति की एक नाड़ी है – उसको "कर्मनाड़ी" कहते हैं। शरीर की गति का उससे विशेष संबंध है। इसी से यहां संयम करने पर शरीर स्थिरता को प्राप्त हो जाता है। जिस तरह "सर्प" और "गोह" अपने अपने बिल में जाकर चंचलता और क्रूरता को त्याग देते हैं। – वैसे ही योगी का मन इस "कर्म" नाड़ी में प्रवेश करते ही अपनी स्वभाविक चंचलता का त्याग कर देता है।

सोलहवी सिद्धिं : कपाल की ज्योति में संयम करने से योगी को सिद्धगणों के दर्शन होते हैं। मस्तक के भीतर कपाल के नीचे एक छिद्र है – उसे "ब्रह्मरूध" कहते हैं उस "ब्रह्मरूध" में मनँ ले जाने से एक ज्योति का प्रकाश नजर आता है उसमें संयम करने से योगी को सिद्ध और महात्माओं के दर्शन होते हैं।

सत्रहवीं सिद्धि : प्रतिभ में संयम करने से योगी को सम्पूर्ण

ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। योग साधना करते-करते योगियों को एक तेजोमय तारा ध्यानवस्था में दिखलायी पड़ता है – उसी तारे का नाम "प्रतिभ" है। चंचल बुद्धि मनुष्य उस तारे का दर्शन नहीं कर सकते।

योगी की बुद्धि जब शुद्ध हो कर ठहरने लगती है – तभी उस भाग्यवान योगी को "प्रतिभ" के दर्शन होते हैं। उसी "प्रतिभ" को स्थिर कर उस में संयम करने से योगी "ज्ञान – राज्य" की सब "सिद्धियों" को प्राप्त कर सकता है।

<u>अठारहवीं सिद्धि :</u> हृदय में संयम करने से योगी का चित्त का "ज्ञान" होता है। चतुर्थ चक्र (चौथे चक्र) का नाम "हृत्कमल" है। इससे अन्तःकरण का एक विलक्षण संबंध है। चित्त के नए और पुराने सब प्रकार के संस्कार रहते हैं – चित्त के नचाने से मन नाचता है। चित्त स्वरूप महामाया की माया से जीव पर प्रकट नहीं होता। जब योगी हृत्कमल में संयम करता है तब वह अपने चित्त का पूर्ण ज्ञाता बन जाता है।

<u>उन्नीसवीं सिद्धि :</u> बुद्धि पुरूष से बिल्कुल अलग है। इन दोनों के अभिन्न ज्ञान से भोग की उत्पति होती है। बुद्धि परार्थ है – उससे भिन्न स्वार्थ है अंहकार शून्य चित्प्रतिविम्ब के संयम करने से पुरूष का ज्ञान होता है। बुद्धि पुरूष का जो परस्पर प्रतिबिम्ब संबंध से अभेद ज्ञान है वहीं पुरूष निष्ठ भोग कहलाता है। बुद्धि दृश्य होने से उसका यह भोग रूप प्रत्यय परार्थ पुरूष के लिए ही है। इस परार्थ से अन्य जो स्वार्थ प्रत्यय है यानि जो बुद्धि प्रतिबिम्बित चित्त सत्त को अवलम्बन कर चिन्मात्र रूप है, उसमें संयम करने से योगी को नित्य शुद्ध – बुद्ध – मुक्तस्वभाव पुरूष का ज्ञान हो जाता है। बुद्धि

के मलिनभाव से रहित – शुद्धभावमय – अंहकार से शून्य – आत्मज्ञान से भरी हुई जो चिद भाव की दशा है – उसी को जान कर उस में जब योगी संयम करता है तब उस को पुरूष के स्वरूप का बोध हो जाता है।

इस परा सिद्धि के पाने पर योगी का प्रतिभ – श्रवन – वेदन --आदर्श – अस्वाद और वार्ता नामक षटसिद्धियों की प्राप्ति हो जाती है।

षटसिद्धियों को फल प्रतिभ सिद्धि से योगी को बतीत – अनागत – विप्रकृष्ट सूक्ष्मातिसूक्ष्म पदार्थों का ज्ञान हो जाता है – श्रावणसिद्धि से योगी को दिव्य श्रवण ज्ञान की पूर्णता यानि प्रणवध्वनि का अनुभव होता है। वेदन सिद्धि से दिव्य दर्शन की पूर्णता – अस्वादसिद्धि के दिव्य इस ज्ञान की पूर्णता और वार्तासिद्धि से दिव्य गन्धज्ञान की पूर्णता स्वतः प्राप्त हो जाती है।

बीसवीं सिद्धि : बन्धन का जो कारण है उसके शिथिल हो जाने से और संयम द्वारा चित्त की प्रवेश निर्गममार्ग नाड़ी के ज्ञान से चित्त दूसरे शरीर में प्रवेश कर सकता है। चंचलता को प्राप्त हुए अस्थिर मन का शरीर में द्वन्द्व तथा आसक्तिजन्य बन्धन है। समाधि प्राप्ति से क्रमशः स्थूल शरीर से सूक्ष्म शरीर का यह बन्धन शिथिल हो जाता है। संयम की सहायता से चित्त के गमनागमनमार्गीय नाड़ी ज्ञान से स्वतः सूक्ष्म शरीर को कहीं पहुंचा देने का नाम प्रवेश क्रिया है।

इन दोनों का जब योगी को बोध हो जाता है तब योगी जब चाहे तब अपने शरीर से निकल कर – दूसरे के शरीर में प्रवेश कर सकता है। इसी का नाम (प्रकाया प्रवेश है)।

इक्कीसवीं सिद्धिः उदानवायु के जीतने से जल – कीचड़ और कण्टक आदि पदार्थों का योगी को स्पर्श नहीं होता और मृत्यु भी वशीभूत हो जाती है। उर्ध्वगमनकारी कण्ठ से ले कर सिर तक व्यापक जो वायु है वहीं उदानवायु कहलाता है। यह उर्ध्वगमनकारी होने से उस में संयम करने वाले योगी का शरीर जल – पंडक और कण्टक आदि से नष्ट नहीं होता। उदानवायु से सब स्नायुओं की क्रियाएं नियमित रहती हैं।

मस्तिष्क का स्वास्थ्य ठीक रह कर चेतन की क्रिया बनी रहती है। इसके अतिरिक्त उदावायु से 'प्राणमय'' कोष सहित ''सूक्ष्म'' शरीर पर ''आधिपत्य'' बना रहता है।

''उदानवायु'' के जय से योगी इच्छा अनुसार शरीर से प्राणोत्क्रमण्रूप ''इच्छा मृत्यु'' को प्राप्त कर सकता है।

जेसे ''भीष्म पितामह'' ने उत्तरायण सूर्य आने पर ही देह त्याग किया था।

बाईसवी सिद्धि : ''समान वायु'' को वश में करने से योगी का शरीर ज्योतिर्मय हो जाता है। नाभि के चारों ओर दूर तक व्यापक रह कर समता को प्राप्त हुआ जो वायु जीवनी क्रिया को साम्यावस्था में रखता है।

उसी वायु को ''समान वायु'' कहते हैं। इसी शरीर की समानता का इस वायु से प्रधान सम्बन्ध है। शारीरिक तेज शक्ति ही जीवनी क्रिया को साम्यावस्था में रखती है। इसलिए समानवायु को संयम से जीत लेने से योगी तेज पुंज हो जाता है।

तेइसवीं सिद्धि : ''कर्ण, इन्द्रिय'' और ''आकाश में आश्याश्रयिरूप'' सम्बन्ध में संयम करने से योगी को दिव्य श्रवन'' प्राप्त होता है। समस्त क्षेत्र और शब्दों का आधार

आकाश है। जब तक कान के साथ आकाश का सम्बन्ध रखा जाता है। तब तक शब्द सुनाई पड़ते हैं अन्यथा नहीं। इससे कान और आकाश का जो आश्रयाश्रीयरूप सम्बन्ध है। उसमें संयम करने से योगी सूक्ष्म से सूक्ष्म छिपे हुए से अति छिपे हुए दूरवर्ती से दूरवर्ती और नाना प्रकार के दिव्य शब्दों को श्रवण कर सकता है।

चोबीसवीं सिद्धि : शरीर और आकाश के सम्बन्ध में संयम करने से लघु यानी हल्की रूई जैसे पदार्थ की धारणा से आकाश में गमन हो सकता है। आकाश और शरीर का व्यापक और व्याव्यरूप से सम्बन्ध है। आकाश सब भूतों से हल्का है ओर सर्वव्यापी है।

योगी जब आकाश और शरीर के सम्बन्ध में संयम करता है। उस समय लघुता के विचार से रूई आदि हल्के से हल्के पदाथो की धारणा भी रखता है – तब इस क्रिया से उस में हल्के पन की सिद्धि हो जाती है।

पचीसवीं सिद्धि : शरीर से बाहर जो मन की स्वाभाविक वृति है उस का नाम "महाविदेह धारणा" है उस के द्वारा प्रकाश के आवरण का नाश हो जाता है। स्थूल शरीर से बाहर शरीर के अश्रयी की अपेक्षा न रखने वाली जो मन की वृति है उसे "महाविदेह" कहते हैं। उसी से ही "अंहकार" का वेग दूर होता है। उस वृति में जो योगी संयम करता है – उस से प्रकाश का "ढकना" दूर हो जाता है जब तक शरीर का अंहकार रहता है तब तक मन की ब्राह्यवृति रहती है। परन्तु जब शारीरिक अंहकार को त्याग कर स्वतन्त्र भाव से मन की वृति बाहर रहती है। तभी योगी क अन्तःकरण : मलरहित और

निःसंग'' रहता है। ऐसा हो जाने पर योगी अंहकार से उत्पन्न हुए कलेश कर्म और कर्मफल इनके सम्बन्ध से साधक मुक्त हो जाता है।

छब्बीसवीं सिद्धि : पंचतत्वों के स्थूल स्वरूप – सूक्ष्म – अन्वय और अर्थवत्व से पांच अवस्थाविशेष है। इनमें (संयम) करने से भूतों पर विजय लाभ होता है। भूतों की ''स्थूल अवस्था'' वह है जो दृष्टिगोचर हुआ करती है। ''स्वरूपावस्था'' वह है जो स्थूल में गुणरूप से अदृष्ट हो। जैसे तेज में उष्णता है ''सूक्ष्मावयस्था तन्मात्रायों की है'' ''अन्वयावस्या'' व्यापक सत्व, रज और तमोगुण की है और पश्चम ''अर्थवत्वावस्था'' फलदायक होती है। जब योगी पंचभूतों की इन अवस्थाओं में संयम द्वारा उन को विजय कर लेता है तब प्रकृति अपने आप उस योगी के अधीन हो जाती है। जैसे गाय अपने आप अपने बच्चे को दुध पिलाया करती है।

सताईसवीं सिद्धि : बुद्धि और पुरूष में पार्थिक्य – ज्ञानसम्पन्न योगी को सर्वभावाधिष्ठातृत्व और सर्वज्ञातृत्व प्राप्त होता है। जब अन्तःकरण की ऐसी निर्मल अवस्था होती है, तब अपने आप परमात्मा का शुद्ध प्रकाश उसमें प्रकाशित होने लगता है, जिससे योगी को बुद्धिरूप दृश्य और पुरूषरूप दृिष्टा में जो तात्विक भेद है वह स्पष्ट अनुभव होने लगता है और ऐसी परिस्थिति में योगी अखिल भावों का स्वामी और सकल विषयों का ज्ञाता बन जाता है।

परा सिद्धि : उपर्युक्त अपरा सिद्धियों की प्राप्ति के अनन्तर योगी को विवेक ख्यातिजनित वैराग्य कारण दोषों के बीज–नाश हो जानेपर ''कैवल्यकी प्राप्ति'' होती है। सिद्धियां दो प्रकार की

हैं, एक परा और अन्य अपरा। विषय सम्बन्धी सब प्रकार की उत्तम, मध्यम और अधम सिद्धियां 'अपरा सिद्धि' कहलाती हैं। ये सिद्धियां मुमुक्षु योगी के लिए हैं इनके सिवा जो स्व–स्वरूप के अनुभव की उपयोगी सिद्धियां हैं वे योगिराज के लिए उपादेय 'परा सिद्धियां' हैं।

सिद्धियों के विषय में मेरी साधकों से प्रार्थना है कि सिद्धियों की पूजा में न फंसे। इसका ना तो इस संसार में कल्याण है न ही अगले लोक में, हम पैसे इकट्ठे कर सकते हैं – चमत्कार कर लोगों को मूर्ख बना सकते हैं। सच्चाई यह है कि हम खुद ही मूर्ख बने रहे हैं। जिस पूजा अर्चना से भव से पार जाने का साधन ना बन सके – उल्टा डूबने की ओर बढ़ें ऐसी पूजा का क्या अर्थ।

भवसागर से पार जाने के लिए वेदान्तिक पूजा – योग इत्यादि।

योग में चलते–चलते अनेक सिद्धियां आगे पीछे घूमती हैं पर अच्छा साधक उस प्रलोभन में नहीं फंसता – अपनी मंजिल की ओर बढ़ता जाता है – एक ही मंजिल "ब्रह्म"।

मैंने सताईस सिद्धियों का वर्णन किया, ऐसे योग के अन्दर अनेकों सिद्धियां आती हैं। फिर इस एक सिद्धि के लिए क्यों लगे रहें – उस का भी अन्त पतन है।

साधना में बढ़ने के लिए कुछ गूढ़ रहस्य

मनुष्य के बंधन और मोक्ष का एक मात्र कारण मन है। मन के विषयसाक्त होने से बंधन मिलते हैं और निर्विषय होने से मोक्ष (इन्द्रियों के विषय) में आसक्त न होने होता है। जिस के जानने से (परमात्मा अनुभति होने से) संसार विलुप्त

हो जाता है। उसी प्रकार जिस प्रकार जागने से स्वपन विलुप्त हो जाता है (रामचरित मानस)। ध्यान योग ना बहुत खाने वालों का सिद्ध होता है न ही बिल्कुल ना खाने वालों का। इसी प्रकार योग न बहुत सोने वालों का सधता है न बहुत जागने वालो का। (गीता 6 – 16)

दुख का नाश करने वाला ध्यान योग – समुचित आहार – विहार करने वाले का समुचित प्रयास परिश्रम करने वाले का तथा समुचित सोने और जागने वाले का सिद्ध होता है। (गीता 6 – 17)

इस पुस्तक नौ अध्यायों "ध्यान" "धारणा" "आहार" "विहार" "ज्ञान" "विज्ञान" चक्र साधना का हम ने अपनी ओर से विस्तार में वर्णन करने का प्रयत्न किया है। अपनी बुद्धि के अनुसार साधक तक पहुंचाने का प्रयास किया है। जैसा कि मैंने पुस्तक के शुरू में ही लिखा है कि योग का पूर्ण वर्णन ऐसा ही है जैसे गागर में सागर भरने का कार्य।

यह सब गुरू कृपा – प्रभु कृपा से जो मैंने अनुभव किए थे – थोड़ा बहुत अध्ययन किया – वही इस पुस्तक में वर्णन करने का यत्न किया है।

आशा करता हूं कि साधक – साधिकाओं की ध्यान साधना में यह पुस्तक सहायक होगी। हर मानव में त्रुटियां होती है। इस पुस्तक में जो त्रुटिया रह गई है। उनको अगले अंक में प्रभु कपा से सुधारने का प्रयत्न करूंगा।

मैंने अपनी समझ और अनुभव के अनुसार ध्यान साधना के विषय में समझाने का प्रयत्न किया है। अब यह पुस्तक अन्तिम चरण में प्रवेश कर रही हे। बहुत से साधक प्रश्न करते हैं कि

ध्यान नहीं लगता है। हमें यह बताएं कि हमें कौन से नियम अपनाने चाहिए जिससे ध्यान में हम आगे बढ़ सकें। जैसे हम ने इस पुस्तक में (Techniques) ध्यान का समय, ध्यान किस लिए बताने का प्रयास किया – वैसे ही कुछ – महापुरूषों द्वारा दर्शाए गए नियमों को बताने का प्रयास कर रहा हूं।

जैसे "श्री राम जी" ने रामायण में कहा है "मृत्यु" वाले घर मनुष्य का "हृदय" रूदन से भर न जाए और शादी वाले घर में हंसी न आए वह मानव नहीं पत्थर है। परन्तु साथ में कहते हैं। डूब न जाना, आसक्त, न होना – लिप्त न होना। जब मनुष्य के अन्दर आसक्ति होती है – तब समझ लेना चाहिए इच्छाओं ने डेरा डाल लिया है, तब मनुष्य अपनी इच्छाओं को पूरा करने के लिए गल्त कार्य शुरू करता है। तब साधना में आगे बढ़ना कठिन हो जाता है। इस लिए साधना में उन्नति के लिए हमें कुछ नियमों को, ज्ञान को अपने अन्दर उतारना है।

1. अपने चरित्र को पवित्र रखना चाहिए
2. अपनी आये के साधन को पवित्र रखना है।
3. नेक कमाई करनी चाहिए।
4. अगर आप सरकारी कर्मचारी हो तो घूस खोरी न करें। यानि **Corruption** न करें।

हम सब यह बात कहते हैं कि हर जीव (ब्रह्म अंश) है। तो फिर हम नाजायज लाभ किस से ले रहे हैं घुस खोरी किस से कर रहे है। उसी (ब्रह्म) से जिस की पूजा कर रहे हैं। क्या ऐसे हम साधना में आगे बढ़ सकेंगे। जिस (ब्रह्म) की पूजा

कर रहे हैं, उसी से **Corruption** कर रहे हैं। वह हमारे परम पिता जी क्या हम से खुश होंगे।

आप की साधना किस बात की साधना है।

यह तो साधना की चदर ओढ़ कर हमारे शिकार खेल रहे हैं। घूसखोरी – रिश्वत का अर्थ यही नहीं है कि आप पैसे ही किसी मनुष्य से लें। आप के दफ्तर का समय 8 बजे है। आप 11 बजे तक घर में पूजा कर रहे हैं। तन्खवाह 8 बजे से शुरू हो गई है। क्या यह घूस खोरी नहीं है। गरीबों की खून की कमाई से तन्खवाह मिलती है तो क्या यह (ब्रह्म) का खून नहीं। गरीब भी (ब्रह्म) का अंश है। यह घोर अपराध नहीं तो क्या है। अपनी सत्ता का दुरूपयोग नहीं तो क्या है।

क्या यह जालिमाना – कातलाना हरकत नहीं है। इमानदारी – हम – खून पसीने की कमाई से जो मिले उसी में गुजारा करना चाहिए।

व्यापारी कम तोले – मिलावट करे – कर्मचारी घूसखोरी करें – फिर दान करें – तीर्थ करें, प्रभु कभी माफ नहीं करते। जिन से धोखा कर के पैसा लिया – चाहे कर्मचारी ने, चाहे व्यापारी ने, दान उन्हीं का होगा जिन का गला काटा गया। आप मुफ्त में पाप की गठड़ी बांधने के अधिकारी बन गए। हेराफेरी की कमाई से भूखे सो जाना अच्छा। अपनी ऐशों आराम के लिए औरों को बर्बाद (नाश) न करो। इस विधि से "राम" का दिया नहीं जलता। **Political Activity** – "स्याहसित" सफेद झूठ। इससे बचिए। गुप्त रूप में साधना करें। गुरू ईष्ट जाने और कोई न जाने। ना ही गल्त धन कमाओं न दान करो। मन से वाणी से – न हाथ से – न पैर

से किसी को कष्ट दो। ना ही किसी को नुक्सान पहुंचायो। गुरू जी, प्रभु जी ऐसी गल्तियों को कभी क्षमा नहीं करते। गुरू साक्षात ईश्वर है। ईश्वर जुल्म को कभी सहन नहीं करते। **Political Activities** से दूर रहें। पद्धतियों के पीछे मत भागें। एकान्त में बैठ एकाग्रता पैदा करो। एकाग्रता की अवस्था में ध्यान साधना करो। लोगों की जय जय कार से दूर रहो। इससे अंहकार बढ़ता है। मैं बड़ा वह कहता है, मैं बड़ा परन्तु बड़ा एक ही है। मेरे प्रभु जी दूसरा ना कोया। सब का जो मालिक है – उसी शाश्वत का नाम बड़ा है।

ईश्वर को पाना चाहते हो तो – एकान्त – एकाग्र अवस्था में रहों। सभाओं में आगे बढ़ चड़ कर चलने वाला आगे कभी नहीं बढ़ सकते। क्योंकि उसमें स्वार्थी आकांक्षाएं जुड़ी हुई हैं।

ऐसे लोग – पदवी – मान – सम्मान के लिए भटके होते हैं। जिस के पास – धन दौलत – सब एशो आराम का सामान है – वह साधक नहीं हो सकता।

फकीरी और धन का क्या मिलाप। आग और घी का क्या रिश्ता। मेरे अपने जीवन के ऐसे अनुभव हैं जो मैंने व्यक्त कर दिए।

स्वामी विवेकानन्द जी के अनुसार साधना में आगे बढ़ने के लिए कुछ रहस्य और शिक्षा –

मारना चाहते हो तो बुरी इच्छाओं को मारो।

जीतना चाहते हो क्रोध ओर इच्छाओं को जीतो।

खाना चाहते हो तो गुस्से को खाओ।

बढ़ाना चाहते हो प्रेम रस बढ़ाओ।

छोड़ना चाहते हो तो राजनितिक षड़यन्त्रों से निकलजाओ।

पीना चाहते हो तो ईश्वर भक्ति का रस पी जाओ।

देना चाहते हो तो नीची निगाह कर दो और भूल जाओ।

लेना चाहते हो तो माता, पिता, गुरू जी का आर्शीवाद लो।

अनाथालयों में सेवा के लिए जाओ।

आना चाहते हो तो दुखियों की सहायता के लिए आओ।

छोड़ना चाहते हो तो घमण्ड – पाप – झूठ – षडयन्त्र एवं अत्याचार को छोड़ो।

मिटाना चाहते हो तो ऊंच नीच का भेद मिटा दो।

जात इन्सानियत होती है। जातिवाद के भेद से बाहर निकलो।

किश्ती के लंगुर **Chains** तभी खुलेंगे – नहीं तो मकड़ी की तरह जकड़ते जाओगे।

बनाना चाहते हो तो धर्मशाला – पाठशाला – कुंए – तालाब बनवाओ।

"स्वामी विवेकानन्द" जी ने इन नियमों के द्वारा साधक को आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया हे। यह नियम हर साधक के लिए आवश्यक हैं।

मनुष्य अपने जीवन के मन्दिर का निर्माण शुभकर्मों की ईटों से बनाता है और कुकर्मों की ईटों से तबाह करता है।

इन शब्दों में "यम" "नियम" पूर्ण हो जाते हैं। उन्नति के साथ साथ साधक मुक्ति की सीढ़ियां चड़ता जाता है। साधना में आगे बढ़ने के लिए "स्वामी श्रेदय श्री शरणानन्द जी" महाराज द्वारा मार्ग दर्शन – महाराज जी के द्वारा साधना में साधक को आगे बढ़ने के लिए कुछ विकार बताए हैं जिन के त्याग के उपाय भी दर्शाए गए हैं।

एक प्रभु से भिन्न अन्य की सक्ता की अस्वीकृति। परिस्थितियों की अनित्यता को जानना। विवेक विरोधी कर्म का त्याग करने – जानने – मानने की शक्तियों का यथायोग्य उपयोग करना

– दूसरों के लिए जानना अपने को और मानना – प्रभु को है यह स्वीकार करना। चित्त की महिमा से परिचित होना। सुख भोग की आशा का त्याग व्यक्तितत्व' की "दासता" तथा गुणों अभिमान का त्याग। अस्तिकता – सब कुछ भगवान है। सब में भगवान है। सब कुछ भगवान का है। इस सत्यता को अपनी योग्यता स्वीकार करनी है। पंचामृत का सेवन करना। हम भगवान के ही हैं। हम यहां भी रहते हैं – भगवान जी के दरबार में रहते हैं। हम जो भी शुभ काम करते हैं – भगवान जी का ही शुभ काम करते हैं। शुद्ध सात्विक जो भी पाते हैं – भगवान जी से ही पाते हैं। भगवान जी के दिए हुए प्रसाद से ही भगवान जी के जनों की सेवा करते हैं। मौत को निरन्तर याद रखना। जो भी करो दूसरों के हित के लिए करें। भगवान जी की प्रसन्नता के लिए ही सब कुछ करना। कामना निवृति के लिए करना। अनन्यचित्त हो कर प्रभु का निरन्तर चिन्तन करना। सम्पूर्ण धर्मों का पालन करना। धर्म के आश्रय का त्याग करते हुए भगवान जी की शरणगति स्वीकार करना। अपना अधिकार मानना (कहां) कर्म करने में, फल में नही। हर एक क्षण, हर एक घटना में – प्रभु की कृपा को स्वीकार करते हुए प्रसन्न रहना। शुभ कर्मों की पूर्ति का सुख न लेना। अधिकार, लालसा का त्याग। भगवान जी से प्रेम बढ़ाने के लिए तथा विषयों से वैराग्य के लिए आपस में सत्त चर्चा करना।

शरीर में "मेरा" मान कर भोजन लेने वाला ना बनना। शरीर को (मैं) और मेरा न मानकर भोजन देने वाला बनना। साधना में समय का "विभाजन" न करना। अर्थात् "अमूक प्रवृति" तो साधन है। "अमूक" नहीं माला फेरना पूजा है, तो, शौच जाना भी तो पूजा है। सभी प्रकृति एक भाव से करना।

अपनी बात को कभी भी दूसरों पर लादने का यत्न न करना। अपने सिद्वान्त को दूसरो से मनवाने के आग्रह का त्याग करना। "रूचि" अरूचि के द्वन्द का अन्त करना। अस्वाभिकता का त्याग करना।

इच्छाओं और आवश्यकताओं का विभाजन स्वीकार करना, दीनता तथा अभिमान का त्याग करना।

"शरीर के लिए परिवार को" – "परिवार के लिए समाज को और समाज के लिए विश्व को हानि न पहुंचाना। बुराई को बुराई जान छोड़ देना। भलाई को भलाई जान कर ही करना, किसी लोभ के वश में आकर भलाई न त्यागना और बुराई करना नहीं। जो कुछ हो रहा है वह भगवान जी के मंगलमय विधान से ही हो रहा है। ऐसा सोच कर निश्चिन्त हो जाओ। शरीर – प्राण किसी भी वस्तु को अपना न मान कर निर्भय हो जाना। आप यही जानो की वह मेरा अपना है। ऐसा विश्वास कर के, आस्था करके प्रियता को उदय होने दो। हर कार्य को भाव की शुद्धि से अपितु "लक्ष्य दृष्टि" रखते हुए करना। कार्य को छोटा बड़ा कभी न जानन्ना। विचार में विश्वास तथा विश्वास में कभी विचार न करना। ज्ञान की महिमा से परिचित होना। मानवता के महत्व को पहचानना। मानव बल का प्रयोग न कर के शान्ति प्राप्त कर सकता है। निज ज्ञान के आदर से मुक्त हो सकता है अपनी श्रद्धा – विश्वास में विकल्प न कर के भक्ति (प्रेम) प्राप्त कर सकता है। सीखने सुनने और मानने जानने का भेद स्वीकार करना।

सत्त चर्चा – सत्त्कर्म तथा सत्संग का भेद जानना। साधना को कठिन मानने की धारणा का त्याग करने में भगवान की पूजा तथा होने में भगवान की लीला स्वीकार करना। शरीर को संस्कार रूपी "वाटिका" की खाद मानना।

जमा की हुई दौलत निर्धनों की धरोहर मानना। बल को निर्बलों, कमजोरों की धरोहर मानना। "योग्यता" को अयोग्यों की धरोहर मानना। देने का भाव रखना अर्थात् जो लेता है वह जड़ है। जो लेता है देता है, वह "जड़ चिद्र – ग्रन्थि। जो देता ही देता है, वह प्रभु का "स्वभाव" यरा सन्तों का स्वभाव का है। जो लेना छोड़ने के लिए और देने के लिए तत्पर रहता है वह साधक का "स्वभाव" है। "मोह युक्त" "क्षमा तथा क्रोध" युक्त "त्याग का त्याग" राग पूर्वक ग्रहण" तथा द्वेष पूर्वक त्याग का त्याग अपने सुधार द्वारा – दूसरों के सुधार में आस्था रखना " संकल्प" "निवृति" की शान्ति को सुख से अधिक महत्व देना। वैराग्य अपनाना सुनने वाले की प्रसन्नता के लिए सुनना। खिलाने वाले की प्रसन्नता के लिए खाना। मिलने वाले की प्रसन्नता के लिए मिलना जिस की आंख सार्थकता के लिए देखती है उसका सभी इन्द्रियों का व्यवहार इसी न्याय से होता है। शरीर बने रहने की न सोचना। दुख का भोग न करके – दुख के प्रभाव को अपनाना। मान्यताओं को कर्तव्य का प्रतीक मानना। अपनी पसन्द को बदलना और भगवान को पसन्द करना और संसार के सुखों को पसन्द न करना। "स्वाधीनता" को पसन्द करना और "पराधीनता" को नापसन्द करना। "प्रतीति" को प्राप्त न जानना तथा "प्राप्त" को "अप्राप्त" न मानना। वर्तमान " अनित्य" जीवन को "नित्य" – जीवन की लालसा मानना। इन्द्रिय ज्ञान के प्रभाव का नाश एवं बुद्धि" के ज्ञान आदर है।

निज दोष और दुःख का वास्तविक ज्ञान। जीवन के क्षण" को, हर क्रिया को उस की लीला मानना।

तू तू ना रहा, मैं मैं न रहा, फिर काम बन जाएगा। साधना में आगे बढ़ने के लिए कबीर जी ने कितने सुन्दर शब्द कहे हैं।

तब मैं था तब तू नहीं था।

अब मैं नहीं अब तू ही तू है।

जब तक साधक ईश्वर और अपने में अन्तर बनाए रखता है, तब तक तेरे मेरे दर्मियान दीवार बनी रही है। संशय कायम रहेगा, रहता है जब उसे यह अनुभव हो जाए कि मेरे में और प्रियतम में अन्तर नहीं है। जो वह है, सो मैं हूं। और जो मैं हूं, सो वह है।

फिर "साक्षात्कार" जैसी स्थिति बनती जाती हे। ध्यान योग के विषय में श्रीमद्भगवत् गीता व्याख्या।

(211) व्याख्याकार स्वामी प्रभुपाद जी द्वारा

बुन्धुरात्मभत्मनस्तस्य येनात्मै वात्मना जितः।

अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत।।6।।

अर्थ – जिस ने मन को जीत लिया है – उस के लिए मन सर्वश्रेष्ठ मित्र है किंतु जो ऐसा नहीं कर पाया, उसके लिए मन सब से बढ़ा शत्रु बना रहेगा।

अष्टांग योग के अभ्यास का प्रयोजन मन को वश में करना है जिस से मानविय लक्ष्य प्राप्त करने में वह मित्र बना रहे। मन को वश में किए बिना योगाभ्यास करना मात्र समय को नष्ट करना है। जो अपने मन को वश में नहीं कर सकता वह सतत् अपने परम शत्रु के साथ निवास करता है और इस तरह उसका जीवन तथा लक्ष्य दोनों ही नष्ट हो जाते हैं। जीव का स्वरूप यह है कि वह अपने स्वामी की आज्ञा का पालन करे। जब तक मन अविर्जित शत्रु बना रहता है तब तक मनुष्य को – काम –क्रोध – लोभ मोह आदि की आज्ञायों का पालन करना है। जब मन पर विजय प्राप्त हो जाती है तो मनुष्य इच्छानुसार उस भगवान की आज्ञा का पालन करता हे। जो सब के हृदय में परमात्मास्वरूप स्थित है।

वास्तविक योगाभ्यास हृदय के भीतर परमात्मा से भेंट करना तथा उनकी आज्ञा का पालन करना है। जो व्यक्ति साक्षात कृष्णभावनामृत स्वीकार करता है। वह भगवान की आज्ञा के प्रति स्वतः समर्पित हो जाता है। श्रीमदभगवत गीता में ''श्री कृष्ण जी'' ने योग और साधना को कितने सुन्दर से वर्णन किया है। मन को वश में किए बिना योगाभ्यास को निर्थक बताया है। जब तक मनुष्य योग साधना के द्वारा अपने हृदय रूपी दर्पण, यहां श्री नारायण जी का वास है नहीं पहुंच पाता, योगाभ्यास का कोई अर्थ नहीं रहता। जो मनुष्य हृदय रूपी दर्पण में प्रवेश कर जाता है वही मुक्ति, और मोक्ष का अधिकारी बन जाता है।

इस पुस्तक ध्यान साधना (ध्यान कैसे करें) में मैंने अपने अनुभव और – अनुभूतियों एवम महापुरूषों के द्वारा दर्शाए गए मार्ग इस पुस्तक में प्रस्तृत करने का प्रयास किया है। मेरे योग गुरू ब्रह्मलीन डा॰ ''हरिकृष्ण'' सदाशिव जी ने हमें इन मार्गों के द्वारा उन्नति करवाई फिर भी साधक साधना न करे तो गुरू का क्या दोष। गुरू महापुरूष मार्ग दर्शाते हैं।

कुण्डलिनीयोग ध्यान क्या है – ध्यान क्यों लगाया जाए – किस समय लगाया जाए। यम – नियम – आसन – प्राणायाम – ध्यान धारणा – समाधि – योग ध्यान की सप्त भूमिकाएं – शुवेसा विचारणा – तनुमानसा – सत्वापति – असंसक्ति – पदार्थि भावनी – तुरीया इन तक पहुंचने के लिए विस्तार में वर्णन करने का यत्न किया है। योग का अर्थ – योगी बनना – विचारों का बदलना – परिवर्तन आना। जैसे हमारी हिन्दुस्तानी संस्कृति में गुरू कुलों में रह कर – साधक लोग आसन – प्राणायाम का अभ्यास करते थे। बाल्य अवस्था – यौवन अवस्था – उन का वही व्यतीत होता था। गुरू कृपा –

भगवती माँ जगजननी की कृपा से जितना मैं प्रस्तुत कर सकता था किया आगे करता रहूंगा। मुझे आशा है इस पुस्तक (ध्यान कैसे करें) के अध्ययन करने के बाद साधकों में साधना के लिए रूचि बढ़ती जाएगी। आसन – प्राणायाम करने तक ही सीमित नहीं रहेंगे। केवल अपने लक्ष्य और उद्देश्य तक पहुंचने का प्रयत्न करेंगे। और समाज के कोने कोने में एक एक साधक तक पहुंचाने का प्रयास करेंगे। उस परमपिता परमेश्वर से यही प्रार्थना है कि साधक लोग अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लें। नश्वर से निकल कर शाश्वत को प्राप्त कर लें।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्ति

वैदिक प्रार्थना (अर्थ सहित) –

ऊ असतो मा सद् गमय।

ऊ असतः – असत्य से मा ' मुझे सद – सत्य की ओर – गमय – ले चल)

ऊ तमसो मा ज्योतिर्गम्य।

(ऊ तमसः – अंधेरे से मा – मुझे – ज्योतिः – प्रकाश की ओर गमय ले चल)

ऊ मृत्योर्मा अमृत गमय।

(ऊ मृत्योः मौत से – मा मुझे अमृतम – अमृत की ओर गमय – ले चल)

सर्वेषां स्वस्तिर भवतु।

(सर्वोषाम – सब का – स्वस्तिर – शुभ – भवतु हो।)

सर्वोषां मंगलं भवतु

(सर्वेषाम् – सब का मंगलम् – भला – भवतु हो।)

सर्वेषां – पूर्ण भवतु।

(सर्वेषाम – सब का पूर्णम – पूर्ण – भवतु हो।)

लोकाः समस्तंः सुखिनः भवन्तु।

(लोकाः – लोक समस्ताः सब सुखिनः सुखी भवन्तु – हो)

सर्वो भवन्तु सुखिनः सर्वेसन्तु निरामयः

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिढ़ दुख भग्भवेत।।

सर्वे – सब भवन्तु हो – सुखिनः – सुचखी सन्तु – हो – निरामयः।

निरोगी सर्वे – सब भद्राणि – भली बातें। पश्यन्तु देखें मा – न कश्चित – कोई दुखभाक – दुखी भवते हो।

ॐ त्रयम्वकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम।

उर्वारूकमिव बन्धनान्मृतयो मुक्षीयमागृतात।

त्रयम्बकम – तीन आंखें वाले शिव जी की

यजामहे – हम पूजा करते हैं।

सुगन्धिम – अच्छे गन्ध से युक्त

पुष्टिवर्धनम – स्वास्थ्य बढ़ाने वाले

उर्वारूकम – खजबूजा इब जैसे

बन्धनान – बन्धन से

मृत्यो : मौन से मान

मुक्षीय – मैं छूटू अमृतात – अमूत से।

हे प्रभु मुझे असत्य से सत्य की ओर ले चल। मुझे अंधेरे से प्रकाश की ओर ले चल। मुझे मौत से अमृत की ओर ले चल। सब शांत हो। सब को शांति मिले। सब का भला हो। सब को पूर्णता मिले। तीनों लोक सुखी हों। सब सुखी हो। सब निरोगी हों। सब भलि भांति देखें। कोई दुखी न हो।

तीन नेत्रों वाले शिव जी की हम पूजा करते हैं। हमारा शरीर उत्तम गन्ध से युक्त स्वास्थ्य बढ़ाने वाला हो। खरबूजे की भांति हम मौत से छूट कर अमृत को पाएं।

ॐ

शान्तिः शान्ति शान्ति

ध्यान कैसे करें

कुण्डलिनी योग धयान क्या है - ध्यान क्यों लगाया जाए किस समय लगाया जाए। यम - नियम - आसन - प्राणायाम - ध्यान धारना - समाधि - योग ध्यान की सप्त भूमिकाएं - भुवेसा विचारणा - तनमानसा - सत्वापति - अंससाक्ति - पदार्थ भावनी - तुरीया इन तक पहुंचने के लिए विस्तार में वर्णन करने का यत्न किया है।

पूज्यपाद

डा॰ विक्रम जी महाराज

Printed & Designed by Chinar Offset Printers, Purani Mandi, Jammu. (M) 94191-84854